ओ३म्

महर्षि दयानन्द सरस्वती

...ने वाला

...र्थात् पूजने

इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि वेदों का ग्रहण करें और वेदोक्त रीति से ही चलें। 'जज्ञिरे' और 'अजायत' इन दोनों क्रियाओं के अधिक होने से वेद अनेक विद्याओं से युक्त है ऐसा जाना जाता हैं। वैसे ही 'तस्मात्' इन दोनों पदों के अधिक होने से यह निश्चय जानना चाहिये कि ईश्वर से ही वेद उत्पन्न हुए हैं किसी मनुष्य से नहीं। वेदों में सब मन्त्र गायत्र्यादि छन्दों से युक्त ही हैं फिर 'छन्दांसि' इस पद के कहने से चौथा जो अथर्ववेद है, उसकी उत्पत्ति का प्रकाश होता है। शतपथ आदि ब्राह्मण और वेदमन्त्रों के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि 'यज्ञ' शब्द से 'विष्णु' का और विष्णु शब्द से सर्वव्यापक जो परमेश्वर है उसी का ग्रहण होता है, क्योंकि सब जगत् की उत्पत्ति करनी परमेश्वर में ही घटती है, अन्यत्र नहीं॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥८॥

उसी पुरुष के सामर्थ्य से अश्व अर्थात घोड़े और बिजुली आदि पदार्थ उत्पन्न हुए हैं। जिनके मुख में दोनों ओर दांत होते हैं, उन पशुओं को 'उभयादत' कहते हैं, वे ऊंट गधा आदि उसी से उत्पन्न हुए हैं। उसी से गोजाति अर्थात् गाय, पृथिवी, किरण और इन्द्रिय उत्पन्न हुई हैं। इसी प्रकार छेरी और भेड़ें भी उसी कारण से उत्पन्न हुई हैं॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥९॥

जो सबसे प्रथम प्रकट था, जो सब जगत् का बनाने वाला है, और सब जगत् में पूर्ण हो रहा है, उस यज्ञ अर्थात् पूजने

के योग्य परमेश्वर को, जो मनुष्य हृदयरूप आकाश में अच्छे प्रकार से प्रेमभक्ति सत्य आचरण करके पूजन करता है, वही उत्तम मनुष्य है। ईश्वर का यह उपदेश सबके लिये है। उसी परमेश्वर के वेदोक्त उपदेशों से, देव जो विद्वान्, साध्य जो ज्ञानी लोग, ऋषि लोग जो वेदमन्त्रों के अर्थ जानने वाले, और अन्य भी मनुष्य जो परमेश्वर के सत्कारपूर्वक सब उत्तम ही काम करते हैं वे ही सुखी होते हैं। क्योंकि सब श्रेष्ठ कर्मों के करने के पूर्व ही उसका स्मरण और प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये, और दुष्ट कर्म करना तो किसी को उचित ही नहीं ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥१०॥

पुरुष उसको कहते हैं कि जो सर्वशक्तिमान् ईश्वर कहाता है। जिसके सामर्थ्य का अनेक प्रकार से प्रतिपादन करते हैं। क्योंकि उसमें चित्र विचित्र बहुत प्रकार का सामर्थ्य है। अनेक कल्पनाओं से जिसका कथन करते हैं। इस पुरुष के मुख अर्थात् मुख्य गुणों से इस संसार में क्या उत्पन्न हुआ है? बल, वीर्य्य, शूरता और युद्ध आदि विद्या गुणों से इस संसारमें कौन पदार्थ उत्पन्न हुआ हैं। व्यापार आदि मध्यम गुणों से किसकी उत्पत्ति हुई है? मूर्खपन आदि नीच गुणों से किसकी उत्पत्ति होती है? इन चारों प्रश्न के उत्तर ये हैं कि—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रो अजायत ॥११॥

इस पुरुष की आज्ञा के अनुसार जो विद्या, सत्यभाषणादि उत्तम गुण और श्रेष्ठ कर्मों से ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न होता है। वह मुख्य कर्म और गुणों के सहित होने से मनुष्यों में उत्तम

कहाता है। और ईश्वर ने बल, पराक्रम आदि पूर्वोक्त गुणों से युक्त क्षत्रिय वर्ण को उत्पन्न किया है। खेती, व्यापार और सब देशों की भाषाओं को जानना तथा पशुपालन आदि मध्यम गुणों से वैश्य वर्ण सिद्ध होता है। जैसे पग सबसे नीच अङ्ग हैं, वैसे मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥

उस पुरुष के मनन अर्थात् ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से चन्द्रमा, और तेजस्वरूप से सूर्य्य उत्पन्न हुआ है। श्रोत्र अर्थात् अवकाश रूप सामर्थ्य से आकाश और वायुरूप सामर्थ्यसे वायु उत्पन्न हुआ है। तथा सब इन्द्रियां भी अपने २ कारण से उत्पन्न हुई हैं। और मुख्य ज्योतिरूप सामर्थ्य से अग्नि उत्पन्न हुआ है॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २ अकल्पयन् ॥

इस पुरुष के अत्यन्त सूक्ष्म सामर्थ्य से अन्तरिक्ष, अर्थात जो भूमि और सूर्य्य आदि लोकों के बीच में पोल है, सो भी नियत किया हुआ है। और जिसके सर्वोत्तम सामर्थ्य से सब लोकों के प्रकाश करने वाले सूर्य आदि लोक उत्पन्न हुए हैं। पृथिवी के परमाणु कारणरूप सामर्थ्य से परमेश्वर ने पृथिवी उत्पन्न की है, तथा जल को भी उसके कारण से उत्पन्न किया है। उसने श्रोत्ररूप सामर्थ्य से दिशाओं को उत्पन्न किया है। इसी प्रकार सब लोकों के कारणरूप सामर्थ्य से परमेश्वर ने सब लोक और उनमें बसने वाले सब पदार्थों को उत्पन्न किया है॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१४॥

देव अर्थात् जो विद्वान् लोग होते हैं, उनको भी ईश्वर ने अपने २ कर्मों के अनुसार उत्पन्न किया है, और वे ईश्वर के दिये पदार्थों का ग्रहण करके पूर्वोक्त यज्ञ का विस्तारपूर्वक अनुष्ठान करते हैं। और जो ब्रह्माण्ड का रचन, पालन और प्रलय करना रूप यज्ञ है, उसी को जगत् बनाने की सामग्री कहते हैं। पुरुष ने उत्पन्न किया जो यह ब्रह्माण्डरूप यज्ञ है, वसन्तऋतु, अर्थात् चैत्र और वैशाख, घृत के समान है। ग्रीष्मऋतु जो ज्येष्ठ और आषाढ़, इन्धन है। श्रावण और भाद्रपद वर्षा ऋतु, आश्विन और कार्त्तिक शरद् ऋतु, मार्गशीर्ष और पौष हिम ऋतु, और माघ तथा फाल्गुन शिशिर ऋतु कहाती है, यह इस यज्ञ में आहुति है। सो यहां रूपकालङ्कार से सब ब्रह्माण्ड का व्याख्यान जानना चाहिये ॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

ईश्वर ने एक २ लोक के चार ओर सात २ परिधि ऊपर २ रची है। जो गोल चीज के चारों ओर एक सूत से नाप के जितना परिमाण होता है, उसको परिधि कहते हैं। सो जितने ब्रह्माण्ड में लोकहैं, ईश्वर ने उन एक २ के ऊपर सात २आवरण बनाये। एक समुद्र, दूसरा त्रसरेणु, तीसरा मेघमण्डल का वायु, चौथा वृष्टिजल और पांचवां वृष्टिजल के ऊपर एक प्रकार का वायु, छठा अत्यन्त सूक्ष्म वायु जिसको धनञ्जय कहते हैं, सातवां सूत्रात्मा वायु जो कि धनञ्जय से भी सूक्ष्म है, ये सात परिधि कहाते हैं। और इस ब्रह्माण्ड की सामग्री (२१) इक्कीस प्रकार की कहाती है। जिसमें से एक प्रकृति, बुद्धि और जीव ये तीनों मिलके हैं, क्योंकि यह अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ हैं, दूसरा

श्रोत्र, तीसरी त्वचा, चौथा नेत्र, पांचवी जिह्वा, छठी नासिका, सातमी वाक्, आठमा पग, नवमा हाथ, दशमी गुदा, ग्यारहमा उपस्थ जिसको लिङ्ग इन्द्रिय कहते हैं, बारहमा शब्द, तेरहमा स्पर्श, चौदहमा रूप, पन्द्रहमा रस, सोलहमा गन्ध, सत्रहमी पृथिवी, अठारहमा जल, उन्नीसमा अग्नि, बीसमा वायु, इक्कीसमा आकाश, ये इक्कीस समिधा कहाती हैं। जो परमेश्वर पुरुष इस सब जगत् का रचने वाला, सबका देखने वाला और पूज्य है, उसको विद्वान् लोग सुनके और उसी के उपदेश से उसी के कर्म और गुणों का कथन, प्रकाश और ध्यान करते हैं। उसको छोड़ के दूसरे को ईश्वर किसी ने नहीं माना। और उसीके ध्यान में अपने आत्माओं को दृढ़ बांधने से कल्याण जानते हैं ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

विद्वानों को देव कहते हैं, और वे सबके पूज्य होते हैं, क्योंकि वे सब दिन परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना, उपासना और आज्ञा पालन आदि विधान से पूजा करते हैं। इससे सब मनुष्यों को उचित है कि वेद मन्त्रों से प्रथम ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना करके शुभकर्मों का आरम्भ करें। जो २ ईश्वर की उपासना करने वाले लोग हैं, वे २ सब दुःखों से छूट के सब मनुष्यों में अत्यन्त पूज्य होते हैं। जहां विद्वान् लोग परमपुरुषार्थ से जिस पद को प्राप्त होके नित्य आनन्द में रहते हैं, उसको मोक्ष कहते हैं, क्योंकि उससे निवृत्त होके संसार के दुःखों में कभी नहीं गिरते। इस अर्थ में निरुक्तकार का भी यही अभिप्राय है कि जो परमेश्वर के अनन्त प्रकाश में मोक्ष को प्राप्त हुये हैं,

वे परमेश्वर ही के प्रकाश में सदा रहते हैं, उनको अज्ञानरूप अन्धकार कभी नहीं होता ॥

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥

उस परमेश्वर पुरुष ने पृथिवी की उत्पत्ति के लिये जल से सारांश रस को ग्रहण करके पृथिवी और अग्नि के परमाणुओं को मिला के पृथिवी रची है । इसी प्रकार अग्नि के परमाणु के साथ जल के परमाणुओं को मिला के अग्नि को, वायु के परमाणुओं के साथ अग्नि के परमाणुओं को मिला के अग्नि को, और वायु के परमाणुओं से वायु को रचा है । वैसे ही अपने सामर्थ्य से आकाश को भी रचा है, जो कि सब तत्त्वों के ठहरने का स्थान है । ईश्वर ने प्रकृति से लेके घास पर्यन्त जगत् को रचा है, इससे ये सब पदार्थ ईश्वर के रचे होने से उसका नाम विश्वकर्मा है । जब जगत् उत्पन्न नहीं हुआ था, तब वह ईश्वर के सामर्थ्य में कारणरूप से वर्त्तमान था । जब २ ईश्वर अपने सामर्थ्य से इस कार्य्यरूप जगत् को रचता है, तब २ कार्य जगत् रूप गुणवाला होके स्थूल बनके देखने में आता है । जब परमेश्वर ने मनुष्य शरीर आदि को रचा है, तब मनुष्य भी दिव्य कर्म करके देव कहाते हैं, और जब ईश्वर की उपासना से विद्या, विज्ञान आदि अत्युत्तम गुणों को प्राप्त होते हैं, तब भी उन मनुष्यों का नाम देव होता है, क्योंकि कर्म से उपासना और ज्ञान उत्तम हैं । इसमें ईश्वर की यह आज्ञा है कि जो मनुष्य उत्तम कर्म में शरीर आदि पदार्थों को चलाता है, वह संसार में उत्तम सुख पाता है, और जो परमेश्वर ही की प्राप्तिरूप मोक्ष की इच्छा करके उत्तम कर्म, उपासना और ज्ञान में पुरुषार्थ करता है, वह उत्तम देव होता है ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

प्र०—किस पदार्थ को जान के मनुष्य ज्ञानी होता है ?

उ०—उस पूर्वोक्त लक्षण सहित परमेश्वर ही को यथावत् जान के ठीक-ठीक ज्ञानी होता है, अन्यथा नहीं। जो सबसे बड़ा, सबका प्रकाश करने वाला, और अविद्या अन्धकार अर्थात् अज्ञान आदि दोषों से अलग है, उसी पुरुष को मैं परमेश्वर और इष्टदेव जानता हूँ। उसको जाने बिना कोई मनुष्य यथावत् ज्ञानवान् नहीं हो सकता क्योंकि उसी परमात्मा को जान के और प्राप्त होके जन्म, मरण आदि क्लेशों के समुद्र समान दुःख से छूट के परमानन्दस्वरूप मोक्ष को प्राप्त होता है, अन्यथा किसी प्रकार से मोक्षसुख नहीं हो सकता। इससे क्या सिद्ध हुआ कि उसी की उपासना सब मनुष्य लोगों को करनी उचित है। उससे भिन्न की उपासना करना किसी मनुष्य को न चाहिये, क्योंकि मोक्ष का देने वाला एक परमेश्वर के विना दूसरा कोई भी नहीं है। इसमें यह प्रमाण है कि व्यवहार और परमार्थ के दोनों सुख का मार्ग एक परमेश्वर की उपासना और उसका जानना ही है, क्योंकि इसके विना मनुष्य को किसी प्रकार से सुख नहीं हो सकता ॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥

जो प्रजा का पति अर्थात् सब जगत् का स्वामी है, वहीजड़ और चेतन के भीतर और बाहर अन्तर्यामिरूप से सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। जो सब जगत् को उत्पन्न करके अपने आप सदा

अजन्मा रहता है। जो उस परब्रह्म की प्राप्ति का कारण, सत्य का आचरण और सत्यविद्या हैं, उसको विद्वान् लोग ध्यान से देख के परमेश्वर को सब प्रकार से प्राप्त होते हैं। जिस में ये सब भुवन अर्थात् लोक ठहर रहे हैं, उसी परमेश्वर में ज्ञानी लोग भी सत्य निश्चय से मोक्ष सुख को प्राप्त होके, जन्म मरण आदि आने जाने से छूट के, आनन्द में सदा रहते हैं॥

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥२०॥

जो परमात्मा विद्वानों के लिये सदा प्रकाशस्वरूप है, अर्थात् उनके आत्माओं को प्रकाश में कर देता, और वही उनका पुरोहित, अर्थात् अत्यन्त सुखों से धारण और पोषण करने वाला है, इससे वे फिर दुःखसागर में कभी नहीं गिरते। जो सब विद्वानों से आदि विद्वान् और जो विद्वानों के ही ज्ञान से प्रसिद्ध अर्थात् प्रत्यक्ष होता है, उस अत्यन्त आनन्दस्वरूप और सत्य में रुचि करने वाले ब्रह्म को हमारा नमस्कार हो। और जो विद्वानों से वेदविद्यादि को यथावत् पढ़ के धर्मात्मा अर्थात् ब्रह्म को पिता के समान मान के, सत्य भाव से प्रेम प्रीति करके सेवा करने वाला जो विद्वान् मनुष्य है, उसको भी हम लोग नमस्कार करते हैं॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे॥२१॥

जो ब्रह्म का ज्ञान है, वही अत्यन्त आनन्द करने वाला और उस मनुष्य की उसमें रुचि का बढ़ाने वाला है। जिस ज्ञान को विद्वान् लोग अन्य मनुष्यों के आगे उपदेश करके उनको आनन्दित कर देते हैं। जो मनुष्य इस प्रकार से ब्रह्म को जानता है,

उसी विद्वान् के सब मन आदि इन्द्रिय वश में हो जाते हैं, अन्य के नहीं ॥

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥२२॥ यजुर्वेद अध्याय ३१ ॥

हे परमेश्वर ! जो आपकी अनन्त शोभारूप श्री और जो अनन्त शुभलक्षणयुक्त लक्ष्मी है, वे दोनों स्त्री के समान हैं। अर्थात् जैसे स्त्री पति की सेवा करती है, इसी प्रकार आपकी सेवा आप ही को प्राप्त होती है, क्योंकि आपने ही सब जगत को शोभा और शुभलक्षणों से युक्त कर रक्खा है। परन्तु ये सब शोभा और सत्यभाषणादि धर्म के लक्षणों से लाभ, ये दोनों आपकी ही सेवा के लिये है। सब पदार्थ ईश्वर के आधीन होने से उसके विषय में यह पत्नी शब्द रूपकालंकार से वर्णन किया है। वैसे ही जो दिन और रात्रि ये दोनों बगल के समान हैं, तथा सूर्य्य और चन्द्र भी दोनों आपके बगल के समान वा नेत्रस्थानी हैं। और जितने ये नक्षत्र हैं, वे आपके रूपस्थानी हैं। और द्यौः जो सूर्य आदि का प्रकाश और विद्युत् अर्थात् बिजुली, ये दोनों मुखस्थानी हैं। तथा ओठ के तुल्य और जैसा खुला मुख होता है, इसी प्रकार पृथिवी और सूर्य्यलोक के बीच में जो पोल है, सो मुख के सदृश है। हे परमेश्वर ! आपकी दया से परलोक जो मोक्षसुख है, उसको हम लोग प्राप्त होते हैं। इस प्रकार की कृपादृष्टि से हमारे लिये इच्छा करो। तथा मैं सब संसार में सब गुणों से युक्त होके सब लोकों के सुखों का अधिकारी जैसे होऊं, वैसी कृपा और इस जगत में मुझको सर्वोत्तम शोभा और लक्ष्मी से युक्त सदा कीजिये। यह आपसे हमारी प्रार्थना है, सो आप कृपा से पूरी कीजिये ॥

जलयान, वायुयान और तार

आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे ।
युञ्जाथामश्विना रथम् ॥

ऋ० अष्ट० १ । अ० ३ । व० ३४ । मं० २ ॥

हे मनुष्यो ! जैसे बुद्धिमान् मनुष्यों के बनाये नाव आदि यानों से समुद्र के पारावार जाने के लिये सुगमता होती है, वैसे ही पूर्वोक्त वायु आदि अश्वि का योग यथावत् करो जिस प्रकार उन यानों से समुद्र के पार और वार में जा सको। हे मनुष्यो ! आओ आपस में मिल के यानों को रचें, जिन से सब देश देशान्तर में हमारा जाना-आना बने ॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥

अग्निजलयुक्त कृष्ण अर्थात् खैंचने वाला जो नियान निश्चित यान है, उसके वेगादि गुण रूप, अच्छी प्रकार गमन करने वाले, जो पूर्वोक्त अग्न्यादि अश्व हैं, वे जलसेचनयुक्त वाष्प को प्राप्त होके उस काष्ठ लोहा आदि से बने हुए विमान को आकाश में उड़ा चलते हैं। वे जब चारों ओर से सदन अर्थात् जल से वेगयुक्त होते हैं, तब अर्थात् यथार्थ सुख के देने वाले होते हैं। जब जलकलाओं के द्वारा पृथिवी जल से युक्त की जाती है, तब उससे उत्तम २ भोग प्राप्त होते हैं ॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥

इन यानों के बाहर भी थम्भे रचने चाहियें जिनमें सब कलायन्त्र लगाये जायं। उनमें एक चक्र बनाना चाहिये, जिसके

घुमाने से सब कला घूमें। फिर उसके मध्य में तीन चक्र रचने चाहियें, कि एक के चलाने से सब रुक जायं, दूसरे के चलाने से आगे चलें, और तीसरे के चलाने से पीछे चलें। उनमें तीन तीन सौ बड़ी-बड़ी कीलें अर्थात् पेच लगाने चाहियें कि जिन से उनके सब अङ्ग जुड़ जायं, और उनके निकालने से सब अलग २ हो जायं। उनमें ६० कलायन्त्र रचने चाहियें, कई एक चलते रहें और कुछ बन्द रहें। अर्थात जब विमान को ऊपर चढ़ाना हो, तब भाफघर के ऊपर के मुख बन्द रखने चाहियें, और जब ऊपर से नीचे उतारना हो तब ऊपर के मुख अनुमान से खोल देना चाहिये। ऐसे ही जब पूर्व को चलाना हो, तो पूर्व के बन्द करके पश्चिम के खोलने चाहियें, और जो पश्चिम को चलाना हो, तो पश्चिम के बन्द करके पूर्व के खोल देने चाहियें। इसी प्रकार उत्तर दक्षिण में भी जान लेना। उनमें किसी प्रकार की भूल न रहनी चाहिये। इस महागम्भीर शिल्पविद्या को सब साधारण लोग नहीं जान सकते, किन्तु जो महाविद्वान् हस्तक्रिया में चतुर और पुरुषार्थी लोग हैं, वे ही सिद्ध कर सकते हैं॥

इस विषय के वेदों में बहुत मन्त्र हैं, परन्तु यहां थोड़ा ही लिखने में बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे।

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम्॥

अथर्व० अ० १ अ० ८ व० २१ मं० ५॥

इस मन्त्र से तारविद्या का मूल जाना जाता है। पृथिवी से उत्पन्न धातु तथा काष्ठादि के यन्त्र और विद्युत् अर्थात् बिजुली इन दोनों के प्रयोग से तारविद्या सिद्ध होती है। क्योंकि

'द्यावापृथिव्योरित्येके' इस निरुक्त के प्रमाण से इनका अश्वि नाम जान लेना चाहिये।

अर्थात् वह अत्यन्त शीघ्र गमनागमन का हेतु होता है। अर्थात् इस तारविद्या से बहुत उत्तम व्यवहारों के फलों को मनुष्य लोग प्राप्त होते हैं। अर्थात् लड़ाई करने वाले जो राज-पुरुष हैं, उनके लिये यह तारविद्या अत्यन्त हितकारी है। वह तार शुद्ध धातुओं का होना चाहिये। और विद्युत प्रकाश से युक्त करना चाहिये। सब सेनाओं के बीच में जिसका दुःसह प्रकाश होता और उल्लंघन करना अशक्यहै। जो सब क्रियाओं के वारम्वार चलाने के लिये योग्य होता है। अनेक प्रकार कलाओं के चलाने से अनेक उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये, विद्युत् की उत्पत्ति करके उसको ताड़न करना चाहिये। जो इस प्रकार का ताराख्य यन्त्र हैं, उसको सिद्ध करके, प्रीति से सेवन करो। किस प्रयोजन के लिये? परम उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिये, तथा दुष्ट शत्रुओं के पराजय और श्रेष्ठ पुरुषों के विजय के लिये तारविद्या सिद्ध करनी चाहिये। जो मनुष्यों की सेना के युद्धादि अनेक कार्य्यों के सहन करने वाला है। जैसे समीप और दूरस्थ पदार्थों का प्रकाश सूर्य्य करता है, वैसे तारयन्त्र से भी दूर और समीप के सब व्यवहारों का प्रकाश होता है। यह तारयन्त्र पूर्वोक्त अश्वि के गुणों ही से सिद्ध होता है। इसको बड़े प्रयत्न से सिद्ध करके सेवन करना चाहिये। इस मन्त्र में पुरुष-व्यत्यय पूर्वोक्त नियम से हुआ है, अर्थात् मध्यम पुरुष के स्थान में प्रथम पुरुष समझना चाहिये॥

(महर्षि दयानन्द भाष्य)

—:)o(:—

गोधन की वृद्धि

इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः ।
इहो सहस्रदक्षिणोपि पूषा नि षीदति ॥

अथर्व० २०-१२७-१२

इस राज्य में हे गौवो ! तुम खूब पैदा होवो । इस राष्ट्र में हे घोड़ो ! तुम खूब वढो । इस राज्य में हे पुरुषो ! वीर्यवान् बलवान् मर्दों ! खूब बढो ! इस देश में हजारों का दान देने वाला प्रजा का पालक पोषक पुरुष विराजता है ।

नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोपती रिषत् ।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥

अथर्व० २०-१२७-१३

हे इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! ये गौवें पीड़ित न हों । इनका गोपति, स्वामी भी पीड़ित न हो । हे राजन् इनपर शत्रु रूप से वर्तने वाला, इनसे स्नेह का व्यवहार न करने वाला स्वामी न हो । चोर डाकू स्वभाव का पुरुष भी इनका स्वामी न हो ।

स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोहोरात्राभ्यामस्तु ।

अथर्व कांड १९ । सू० ९ । म० ७

हे ईश्वर ! हमारा कल्याण हो ! हमें अभय हो, कहीं भी भय न रहे । दिन रात्रि पर हमारा वश हो ।

—जयदेव शर्मा विद्यालंकार

कतिपय—प्रश्नोत्तर

इहेत्था प्रागपागुदगधराग् । आसन्ना उदभिर्यथा ॥

इस जगत् में इस प्रकार आगे, पीछे, ऊपर और नीचे ये सब दिशाएं जलों और जीवों से व्याप्त हैं । बतलाओ कैसे ? उत्तर—ऐसे भरी हैं जैसे जलों से जलपात्र भरे हों ।

वत्साः प्रुषन्त आसते ॥

जीवों के वसाने वाले लोक बिन्दु के समान उस अनन्त ब्रह्म में स्थित हैं । कहो कैसे ? उत्तर—ऐसे जैसे जल में घी के बिन्दु ।

स्थालीपाको वि लीयते ॥

यह समस्त प्राकृतिक संसार और जीव आग पर रक्खी हंडिया के समान कालाग्नि से परिपक्व होता है और स्वयं विविध प्रकारों से विलीन हो जाता है । बतलाओ कैसे ? उत्तर - जैसे पीपल के पत्ते पीपल पर आप से आप परिपक्व होकर पीले पड़ जाते हैं । और आप से आप दूर गिरते हैं । उसी प्रकार ये जीव ब्रह्म रूप अश्वत्थ पर पककर स्वयं मुक्त हो जाते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं इसी प्रकार यह संसार भी प्रलयकाल में आप से आप कारण में लीन हो जाता है ।

सा वै स्पृष्टा लीयते ॥

वह अविद्या तो सब तरफ से ज्ञानरूप ब्रह्म से स्पर्श पाकर ही विलीन हो जाती है । बतलाओ कैसे ? ऐसे जैसे पानी की बूंद हाथ से छूते ही उसी में लग जाती है ।

ऊष्णे लोहे न लिप्सेथाः ॥

प्रतप्त, गरम लोहे पर मत लोभ करो। अर्थात् उष्ण, दाह-कारी दुःखदायी जन्म लाभ, संसार में जन्म लेने के निमित्त भोग आदि के लाभ की इच्छा मत करो। कैसे? जैसे गरम चमचे पर मीठा पदार्थ लगा देखकर बालक लोभ से उसपर मुंह मारते हैं उनका मुख जल जाता है इसी प्रकार भोगमय, कष्टप्रद राजस, जीवन रूप जन्म लाभ पर मत ललचाओ। दुःख पाओगे।

इहेत्थ प्रागपागुदगधराग्। अशिद्दिलचुं शिश्लिचते ॥

अथर्व० का० २० सू० १३४ मं० १-६ ॥

सब तरफ से यह प्रकृति उस ब्रह्म को जो उससे चिपटना भी नहीं चाहता एवं असंग हैं स्वयं उससे चिपटना चाहती है। उससे लगा चाहती है और संसार को उत्पन्न कर लेती है। बतलाओ कैसे? जैसे चींटी वट बीज को।

अलाबूनि ।१।

[प्रश्न] चारों तरफ से घिर कर भी उनमें विद्वान् किस प्रकार असक्त रहे? (उत्तर) जैसे जलों में तूम्बे।

पृषातकन्यानि २।

समस्त लोक बिन्दुओं के समान कैसे हैं? उत्तर-जैसे पानी में घृत के बिन्दु हों।

अश्वत्थपलाशम् ।३।

जीवगण किस प्रकार परिपक्व ज्ञानवान् होकर ब्रह्म में लीन होते हैं? उत्तर—हंडिया में चावलों के समान परिपक्व होते हैं। और मुक्त हो जाने में पीपल के पत्ते को हम दृष्टान्त रूप से कहते हैं। वह स्वयं पक कर टूट जाता है।

विप्रुट् ।४।

अविद्या ब्रह्मज्ञान को छूते ही कैसे विलीन हो जाती है उत्तर—जैसे– पानी की बून्द ।

पिपीलिका वटः ।

एक चिपटना नहीं चाहता तो भी दूसरा उस को चिपट ही जाता है । कैसे ? उत्तर—जैसे कीड़ी वटबीज को ।

चमसः ।

दुःखदायी जन्म की लालसा मत करो । कैसे ? उत्तर—जैसे 'गरम चमचा ।' उसको मुख लगाने से मुख जल जाता है । उसी प्रकार दुःखदायी जन्म की अभिलाषा मत करो ।

श्वा । पर्णशदः । गोशफः । जारितरावदामो दैव ॥

भोक्ता होकर जीव कैसे संसार में प्रविष्ट होता है ? उत्तर जैसे रोटी को देखकर कुत्ता आता है ।

शरीर से जीव किस प्रकार निकल जाता है ? उत्तर—ऐसे जैसे पंखों वाला पक्षी घोंसला छोड़ कर निकल भागता है ।

दो भागों में फट कर वह कैसे स्थित है ?, उत्तर—ऐसे जैसे गौ का खुर फट कर भी पृथ्वी पर जम कर पड़ा करता है । हे विद्वन् हम इस प्रकार उक्त प्रश्नों का प्रतिवचन करते हैं ।

विजय प्राप्त करो

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥

[सामवेद उत्तरार्चिक]

हे मनुष्यों ! आगे बढ़ो, विजयी होओ, इन्द्र तुमको सुख और शान्ति दें, तुम्हारी बाहुएँ असह्य हों जिससे तुम अजेय हो जाओ । (जयदेव शर्मा विद्यालंकार)

पुनर्जन्म

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्य्यमुच्चरन्तमनुमते मृडया नः स्वस्ति ॥

हे सुखदायक परमेश्वर! आप कृपा करके पुनर्जन्म में हमारे बीच में उत्तम नेत्र आदि सब इन्द्रियां स्थापन कीजिये। तथा प्राण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, बल, पराक्रम आदि युक्त शरीर पुनर्जन्म में कीजिये। हे जगदीश्वर! इस संसार अर्थात इस जन्म और परजन्म में हम लोग उत्तम २ भोगों को प्राप्त हों। तथा हे भगवन्! आपकी कृपा से सूर्य्यलोक, प्राण और आपको विज्ञान तथा प्रेम से सदा देखते रहें। हे अनुमते=सबको मान देनेहारे! सब जन्मों में हम लोगों को मृडय=सुखी रखिये, जिससे हम लोगों को स्वस्ति अर्थात् कल्याण हो॥

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम्।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनःपूषा पथ्यां या स्वस्तिः ॥

ऋ० अ० ८। अ० १। व० २३। मं० १, २॥

हे सर्वशक्तिमन्! आपके अनुग्रह से हमारे लिये वारम्वार पृथिवी प्राण को, प्रकाश चक्षु को, और अन्तरिक्ष स्थानादि अवकाशों को देते रहें। पुनर्जन्म में सोम अर्थात् ओषधियों का रस हमको उत्तम शरीर देने में अनुकूल रहे। तथा पुष्टि करने वाला परमेश्वर कृपा करके सब जन्मों में हमको सब दुःख निवारण करने वाली पथ्यरूप स्वस्ति को देवे॥

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन्। वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्। यजु०अ०४। मं०१५॥

हे सर्वज्ञ ईश्वर ! जब हम जन्म लेवें, तब २ हम को शुद्ध मन, पूर्ण आयु, आरोग्यता, प्राण, कुशलतायुक्त जीवात्मा, उत्तम चक्षु और श्रोत्र प्राप्त हों। जो विश्व में विराजमान ईश्वर है, वह सब जन्मों में हमारे शरीरों का पालन करे। सब पापों के नाश करने वाले आप ! हमको बुरे कामों और सब दुःखों से पुनर्जन्म में अलग रक्खें ॥

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च।
पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥

अथर्व कां० ७। अनु० ६। सूक्त ६७ मं० १॥

हे जगदीश्वर ! आप की कृपा से पुनर्जन्म में मन आदि ग्यारह इन्द्रिय मुझ को प्राप्त हों। अर्थात् सर्वदा मनुष्य देह ही प्राप्त होता रहे ! अर्थात् प्राणों को धारण करनेहारा सामर्थ्य मुझ को प्राप्त होता रहे। जिस से दूसरे जन्म में भी हम लोग सौ वर्ष वा अच्छे आचरण से अधिक भी जीवें। तथा सत्य-विद्यादि श्रेष्ठ धन भी पुनर्जन्म में प्राप्त होते रहें। और सदा के लिये ब्रह्म जो वेद है, उसका व्याख्यान-सहित विज्ञान तथा आप ही में हमारी निष्ठा बनी रहे। तथा सब जगत् के उपकार के अर्थ हम लोग अग्निहोत्रादि यज्ञ को करते रहें। हे जगदीश्वर ! हम लोग जैसे पूर्वजन्मों में शुभ गुण धारण करनेवाली बुद्धि से उत्तम शरीर और इन्द्रियसहित थे, वैसे ही इस संसार में पुनर्जन्म में भी बुद्धि के साथ मनुष्यदेह के कृत्य करने में समर्थ हों। ये सब शुद्धबुद्धि के साथ मुझ को यथावत् प्राप्त हों। जिन से हम लोग इस संसार में मनुष्यजन्म को धारण करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सदा सिद्ध करें, और इस सामग्री से आप की भक्ति को प्रेम से सदा किया करें। जिस करके किसी जन्म में हमको कभी दुःख प्राप्त न हो ॥

पुनर्जन्म के फल

आ यो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषे पुरूणि।
धास्युर्योनिं प्रथम आ विवेशा यो वाचमनुदितां चिकेत ॥

अथर्व० कां० ५। अनु० १। सूक्त १। मं० २

जो मनुष्य पूर्वजन्म में धर्माचरण करता है, उस धर्माचरण के फल से अनेक उत्तम शरीरों को धारण करता, और अधर्मात्मा मनुष्य नीच शरीर को प्राप्त होता है। जो पूर्वजन्म में किए हुए पाप पुण्य के फलों को भोग करने के स्वभावयुक्त जीवात्मा है, वह पूर्व शरीर को छोड़ के वायु के साथ रहता है, पुनः जल ओषधि वा प्राण आदि में प्रवेश करके वीर्य्य में प्रवेश करता है, तदनन्तर योनि अर्थात् गर्भाशय में स्थिर होके पुनः जन्म लेता है। जो जीव अनुदित वाणी, अर्थात् जैसी ईश्वर ने वेदों में सत्यभाषण करने की आज्ञा दी है वैसा ही यथावत् जान के बोलता है, और धर्म ही में यथावत् स्थित रहता है, वह मनुष्ययोनि में उत्तम शरीर धारण करके अनेक सुखों को भोगता है। और जो अधर्माचरण करता है,वह अनेक नीचे शरीर अर्थात कीट पतङ्ग पशु आदि के शरीर को धारण करके अनेक दुःखों को भोगता है ॥

द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥

य० अ० १६। मं० ४७ ॥

इस संसार में हम दो प्रकार के जन्मों को सुनते हैं। एक मनुष्य-शरीर का धारण करना और दूसरा नीच गति से पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, वृक्ष आदि का होना। इनमें मनुष्य शरीर

के तीन भेद हैं—एक पितृ अर्थात् ज्ञानी होना, दूसरा देव अर्थात् सब विद्याओं को पढ़के विद्वान् होना, तीसरा मर्त्य अर्थात् साधारण मनुष्यशरीर का धारण करना। इसमें प्रथम गति अर्थात् मनुष्यशरीर पुण्यात्माओं और पुण्यपाप तुल्य वालों को होता है, और दूसरा जो जीव अधिक पाप करते हैं उनके लिये हैं। इन्हीं भेदों से सब जगत् के जीव अपने २ पुण्य और पापों के फल भोग रहे हैं। जीवों को माता और पिता के शरीर में प्रवेश करके जन्मधारण करना, पुनः शरीर को छोड़ना, फिर जन्म को प्राप्त होना वारम्वार होता है॥

जैसा वेदों में पूर्वापर जन्म के धारण करने का विधान किया है. वैसा ही निरुक्तकार ने भी प्रतिपादन किया है—

मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः।
नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै॥
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।
मातरो विविधाः दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा॥
अवाङ् मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः॥

निरु० अ० १४। खं० ६॥

जब मनुष्य को ज्ञान होता है तब वह ठीक २ जानता है कि मैंने अनेक वार जन्ममरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के हजारह गर्भाशयों का सेवन किया। अनेक प्रकार के भोजन किये, अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया, अनेक माता पिता और सुहृदों को देखा। मैंने गर्भ में नीचे मुख ऊपर पग इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त होके अनेक जन्म धारण किये। परन्तु अब इन महादुःखों से तभी छूटूंगा कि जब परमेश्वर में पूर्ण प्रेम और उसकी आज्ञा का पालन करूंगा,

नहीं तो इस जन्ममरणरूप दुःखसागर के पार जाना कभी नहीं हो सकता ॥

पुर्नजन्म का ज्ञान क्यों नहीं

अनेक मनुष्य ऐसा (प्रश्न) करते हैं कि जो पूर्वजन्म होता है, तो हमको उसका ज्ञान इस जन्म में क्यों नहीं होता ?

उत्तर—आंख खोल के देखो कि जब इसी जन्म में जो २ सुख दुःख तुमने बाल्यावस्था में अर्थात् जन्म से पांच वर्ष पर्य्यन्त पाये हैं, उनका ज्ञान रहता, अथवा जो कि नित्य पठन पाठन और व्यवहार करते हैं, उनमें से भी कितनी ही बातें भूल जाते हैं, तथा निद्रा में भी यही हाल हो जाता है कि अब के किये का भी ज्ञान नहीं रहता। जब इसी जन्म के व्यवहारों को इसी शरीर में भूल जाते हैं, तो पूर्व शरीर के व्यवहारों का कब ज्ञान रह सकता है ?

तथा ऐसा भी (प्रश्न) करते हैं कि जब हमको पूर्वजन्म के पाप पुण्य का ज्ञान नहीं होता, और ईश्वर उनका फल सुख देता है, इससे ईश्वर का न्याय वा जीवों का सुधार कभी नहीं हो सकता।

उत्तर - ज्ञान दो प्रकार का होता है—एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमानादि से। जैसे एक वैद्य और दूसरा अवैद्य, इन दोनों को ज्वर आने से वैद्य तो इसका पूर्व निदान जान लेता है, और दूसरा नहीं जान सकता। परन्तु उस पूर्व कुपथ्य का कार्य्य जो ज्वर है, वह दोनों का प्रत्यक्ष होने से वे जान लेते हैं कि किसी कुपथ्य से ही यह ज्वर हुआ है, अन्यथा नहीं। इसमें इतना विशेष है कि विद्वान् ठीक २ रोग के कारण और कार्य्य को निश्चय करके जानता है, और वह अविद्वान् कार्य्य को तो ठीक २ जानता है, परन्तु कारण में उसको यथावत् निश्चय

नहीं होता। वैसे ही ईश्वर न्यायकारी होने से किसी को बिना कारण से सुख वा दुःख कभी नहीं देता। जब हमको पुण्य पाप का कार्य्य सुख और दुःख प्रत्यक्ष है, तब हमको ठीक निश्चय होता है कि पूर्वजन्म के पाप पुण्यों के बिना उत्तम, मध्यम और नीच शरीर तथा बुद्धयादि पदार्थ कभी नहीं मिल सकते। इससे हम लोग निश्चय करके जानते हैं कि ईश्वर का न्याय और हमारा सुधार ये दोनों काम यथावत् बनते हैं।

इत्यादि प्रश्नोत्तर बुद्धिमान् लोग अपने विचार से यथावत् जान लेवें।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

आत्म रक्षा

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा ॥१॥

भाषार्थ—हे प्राण और अपान! तुम दोनों मृत्यु से मुझे बचाओ, यह सुन्दर वाणी हो॥

भावार्थ -मनुष्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, प्राणायाम,पथ्य भोजन आदि से प्राण अर्थात् भीतर जाने वाली श्वास, और अपान, अर्थात् बाहिर आने वाली श्वास की स्वस्थता स्थापित करें और बलवान् रह कर चिरंजीव होवें॥

द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा ॥२॥

भावार्थ—हे आकाश और पृथिवी! दोनों पूर्ण श्रवण शक्ति के साथ मेरी रक्षा करो, यह सुवाणी हो॥

भावार्थ—सब दिशाओं में मनुष्य को अपनी श्रवणशक्ति बढ़ानी चाहिये॥

सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ॥३॥

भाषार्थ—हे सूर्य, तू दृष्टि के साथ मेरी रक्षा कर, यह सुवाणी हो ॥

भावार्थ—सूर्य प्रकाश का आधार है, और उसी से नेत्र में ज्योति आती है। मनुष्य को सूर्य के समान अपनी दर्शन शक्ति संसार में स्थिर रखनी चाहिये ॥

अग्ने वैश्वानर विश्वै मा देवैः पाहि स्वाहा ॥४॥

भाषार्थ—हे सब को चलाने वाले अग्नि ! सब इन्द्रियों के साथ मेरी रक्षाकर, यह सुन्दर आशीर्वाद हो।

भावार्थ—शरीर में अग्नि अर्थात् उष्णता का होना, बल, तेज और प्रताप का लक्षण है और इन्द्रिय आदि का चलाने वाला है। सब मनुष्य अन्न की पाचन शक्ति से शरीर में अग्नि स्थिर रखकर सब इन्द्रियों को पुष्ट करें और उत्तम पुरुषों के सत्संग से स्वस्थ और सुखी रहें ॥

विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ॥५॥

भाषार्थ—हे सर्वपोषक परमेश्वर ! सब पोषण शक्ति से मेरी रक्षा कर, यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥

भावार्थ—सब शरीर को स्वस्थ रखकर मनुष्य उस परमेश्वर के अनन्त पथ्य, पोषक द्रव्यों और शक्तियों का उपयोग और अपनी शारीरिक और आत्मिक शक्ति बढ़ा कर सदा बलवान् रहकर सर्व पोषक बनें और आनन्द भोगें ॥

—क्षेमकरण दास त्रिवेदी

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

—आर्य समाज का चौथा नियम

आयु वृद्धि के लिए प्रार्थना

ओऽजोस्योजो मे दाः स्वाहा ॥१॥

भाषार्थ—[हे ईश्वर] तू शारीरिक सामर्थ्य है, मुझे शारीरिक सामर्थ्य दे, यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥

भावार्थ—(ओजः) बल और प्रकाश का नाम है। वैद्यक में रसादि सात धातुओं से उत्पन्न, आठवें धातु शरीर के बल और पुष्टि के कारण, और ज्ञानेन्द्रियों की नीरोगता को (ओजः) कहते हैं। जैसे (ओजः) हमारे शरीरों के लिये है वैसे ही परमात्मा सब ब्रह्माण्ड के लिये है ऐसा विचार कर मनुष्यों को शारीरिक शक्ति बढ़ानी चाहिये ॥

सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ॥

भाषार्थ—[हे परमात्मा !] तू पराक्रम स्वरूप है,मुझे आत्मिक पराक्रम दे, यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥

भावार्थ—अनन्त ब्रह्माण्डों का रचक और धारक परमेश्वर पराक्रम स्वरूप है। ऐसा सोचकर विद्यादि उपायों से मनुष्य अपनी आत्मिक शक्ति बढ़ावें ॥

बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ॥

भाषार्थ—[हे ईश्वर !] तू सामाजिक बल है मुझे सामाजिक बल दे, यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥

भावार्थ—परमेश्वर में सब देवता मनुष्य आदि समाजों का बल है, ऐसा जानकर मनुष्य अपने कुटुम्बी आदि से प्रीति बढ़ा कर सामाजिक बल बढ़ावे ॥

आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ॥

भाषार्थ—[हे ईश्वर !] तू आयु [जीवन शक्ति] है, मुझे आयु दे, यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥

भावार्थ—ईश्वर ने हमें अन्न बुद्धि, ज्ञान आदि जीवन सामग्री देकर बड़ा उपकार किया है, ऐसे ही हम भी परस्पर उपकार से अपना जीवन बढ़ावें।

श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ॥

भाषार्थ—[हे ईश्वर!] तू श्रवण शक्ति है मुझे श्रवण शक्ति दे, यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥

भावार्थ—परमेश्वर अपनी अनन्त श्रवण शक्ति से हमारी टेर सुनता और संकटों को काटता है। ऐसे ही हम अपनी श्रवण शक्ति को नीरोग रख कर दूसरों के दुःखों का निवारण करें और वेदादि शास्त्रों का श्रवण करें ॥

चक्षुरसि चक्षु मे दाः स्वाहा ॥

भाषार्थ—[हे ईश्वर!] तू दृष्टि [दर्शन शक्ति] है, मुझे दर्शन शक्ति दे, यह सुन्दर आशीर्वाद हो ॥

भावार्थ—ऋग्वेद पुरुष सूक्त १०।९०।१। में भी परमेश्वर का नाम (सहस्राक्षः) अनन्त दर्शन शक्ति वाला है, इस प्रकार परमात्मा को सर्वद्रष्टा समझ कर मनुष्य अपनी दर्शन शक्ति चंगी रक्खे, और यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर के बहुदर्शी, दूरदर्शी और न्यायकारी होवे ॥

परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ॥

अथर्ववेद कांड २ सू० १७-१६ ॥

भाषार्थ—[हे परमेश्वर!] तू सब प्रकार पालन शक्ति है, मुझे सब प्रकार की पालन शक्ति दे, यह आशीर्वाद हो ॥

भावार्थ—परमेश्वर को अथर्व १६।६।१। में (सहस्रबाहुः) अनन्त भुजाओं की शक्ति वाला कहा है। मनुष्य उसकी अनन्त रक्षण शक्ति देख कर आप भी मनुष्यों में (सहस्रबाहुः) महा रक्षक और (शतक्रतुः) शतकर्मा अर्थात् बहुकार्य कर्त्ता होवे ॥

हम निर्भय हों

यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः।

एवा मे प्राण मा विभेः ॥१॥

भाषार्थ—जैसे निश्चय करके आकाश और पृथिवी दोनों न दुःख देते हैं, और न डरते हैं। ऐसे ही, मेरे प्राण ! तू मत डर ॥

भावार्थ—यह आकाश और पृथिवी आदि लोक परमेश्वर के नियम पालन से अपने २ स्थान और मार्ग में स्थिर रहकर जगत् का उपकार करते हैं, ऐसे ही मनुष्य ईश्वर की आज्ञा मानने से पापों को छोड़कर और सुकर्मों को करके सदा निर्भय और सुखी रहता है ॥

यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः।

एवा मे प्राण मा विभेः ॥२॥

भाषार्थ—जैसे निश्चय करके दिन और रात दोनों न दुख देते हैं और न डरते हैं, वैसी ही मेरे प्राण ! तू मत डर ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अपने काल प्रयोग में नहीं चूकते वे अपने सुप्रबन्ध से सदा निर्भय रहते हैं ॥

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः।

एवा मे प्राण मा विभेः ।३॥

भाषार्थ—जैसे निश्चय करके सूर्य और चन्द्र दोनों न दुख देते हैं और न डरते हैं, वैसे ही मेरे प्राण तू मत डर ॥

भावार्थ—जैसे ईश्वर के नियम से सूर्य अपनी राशियों में घूमकर संसार में किरणों और प्रकाश द्वारा वृष्टि आदि से, और चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश लेकर अन्न आदि औषधों को

पुष्ट करके, उपकार करते और निर्भय विचरते हैं, ऐसे ही मनुष्य भी वेद विहित धर्म की रक्षा करके सदा प्रसन्न रहें ॥

यथा ब्रह्म च क्षत्रं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

ए वा मे प्राण मा बिभेः ॥४॥

भाषार्थ—जैसे निश्चय करके ब्राह्मण जन और क्षत्रिय जन, दोनों न दुःख देते और न डरतेहैं । वैसे ही प्राण ! तू मत डर ॥

भावार्थ—जैसे सत्यवक्ता ब्राह्मण और सत्य पराक्रमी क्षत्रिय न सताते और न भय करते हैं, वैसे ही प्रत्येक मनुष्य सत्य-वक्ता और सत्य पराक्रमी होकर ईश्वराज्ञा पालन में निर्भय होकर आनन्द उठावे !!

यथा सत्यं चानृतं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

ए वा मे प्राण मा बिभेः ॥५॥

भाषार्थ—जैसे निश्चय करके यथार्थ और अयथार्थ न दुःख देते, और न डरते हैं । वैसे ही मेरे प्राण ! तू मत डर ॥

भावार्थ—सत्य अर्थात् धर्म का विधान, और असत्य अर्थात् अधर्म का निषेध, यह दो प्रधान अंग न्याय के हैं । मनुष्य विधि और निषेध के यथावत् रूप को समझ कर, कुमार्ग छोड़ कर सुमार्ग में निर्भय चलें और अचल आनन्द भोगें ॥

यथा भूतं च भव्यं च न बिभीतो न रिष्यतः ।

ए वा मे प्राण मा बिभेः ॥६॥

भाषार्थ—जैसे निश्चय करके अतीत काल और भविष्यत् काल न दुःख देते और न डरतेहैं वैसेही मेरे प्राण ! तू मतडर ॥

भावार्थ—समर्थ, सत्य प्रतिज्ञा वाले मनुष्य पहले विजयी हुये हैं और आगे होंगे । इसी प्रकार सब मनुष्य भूत और भविष्यत् का विचार करके जो कार्य करते है वे सुखी रहते हैं ।

—क्षेमकरण दास त्रिवेदी

राक्षसों से बचो

अग्ने जरितर्विश्पतिस्तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ।
मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ॥
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः ।

ऋग्वेद मं० ८ । ६० । १९-२०

हे दिव्यगुणयुक्त तथा स्तुति के योग्य अग्ने ! तू राक्षसों को संताप देने वाला प्रजाओं का पालक, कभी भी घर को छोड़ कर न जाने वाला घर का स्वामी, अत्यन्त पूज्य, द्युलोक का रक्षक और उपासक के घर में सदा वर्तमान रहने वाला है ॥

हे तेजस्वी धनों से युक्त अग्ने ! राक्षसादि हमारे अन्दर किसी भी प्रकार न प्रवेश कर सकें । पीडादायक दुःख रोग और राक्षसों की यातनायें भी हममें न प्रवेश करें । हे अग्ने ! बिना अन्न के भुखमरी और राक्षसों को हमसे कोसों दूर कर ॥

भावार्थ—

हे अग्ने ! तू शत्रुओं को सन्ताप देने वाला, प्रजाओं का पालक, कभी भी उपासना का घर छोड़कर न जाने वाला, सभी घरोंका स्वामी, अत्यन्त पूज्य है । अतः हमें ऐसा बलवान् बना कि हममें राक्षस और पीडादायक शत्रु रोग आदि न घुस सकें, साथ ही भुखमरी आदि दुर्दैव भी कोसों दूर रख ।

यज्ञ की महिमा

गाव उपावतावत मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥

हे गायो ! तुम तालाबों के पास आओ, जहां तुम पुष्ट होती हो, उस यज्ञमय देश की भूमि अत्यन्त उपजाऊ अर्थात् फलप्रद होती है, उस देश के लोगों के दोनों कान सोने के होते हैं।

वर्षा के बरसने पर जब सारे कुंवे और तालाब भर जाते हैं, तब गायें पानी के लिए उन तालाबों के पास आती हैं तथा पानी पीकर और हरी घास खाकर वे पुष्ट होती हैं। इस प्रकार जिस देश में गायें पुष्ट होती हैं, वहां की भूमि उपजाऊ होकर वह देश धन-धान्य से समृद्ध होता है और वहां के निवासी भी स्वर्ण आदि धनों से बड़े सम्पन्न होते हैं, पर यह बात यज्ञमय देश में ही हो सकती है ॥

आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् ।
रसा दधीत वृषभम् ॥
ते जानत स्वमोक्यं१ सं वत्सासो न मातृभिः ।
मिथो नसन्त जामिभिः ॥ ऋ० मं० ८ । ७२ । १२-१४ ॥

हे लोगो ! तुम द्यावापृथ्वी के बीच में सर्वत्र कान्तिमान तथा यज्ञ के आश्रय से रहने वाले अग्नि को सिञ्चित करो। जिससे पृथ्वी वर्षा करने वाले मेघ को धारण कर सके ॥

बछड़े जिस प्रकार माताओं से परस्पर मिलते हैं, उसी प्रकार वे गौवें भी अपने निवास स्थान को जानती हुई अपने बन्धुबान्धवों-परिवारों के साथ मिलती हैं।

यज्ञों के करने से पृथ्वी में भी शक्ति उत्पन्न होती है, और

तब वह वर्षा जल को सोखकर बड़ी उपजाऊ बनती है। जितने ज्यादा यज्ञ किए जायेंगे, उतनी ज्यादा जल सोखने की शक्ति इस भूमि में बढ़ेगी। इस प्रकार उपजाऊ होने पर खूब धान्य और चारा उत्पन्न होगा, तब सभी गायें आपस में मिलकर उस देश में चरेंगी और पुष्ट होंगी ॥

—वेदमूर्त्ति श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सुख शान्ति की प्रार्थना

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्व१न्तरिक्षम् ।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥१॥

द्यौः आकाश शान्त, शान्तिदायक, सुखप्रद हो। पृथिवी शान्तिदायक हो। यह विशाल अन्तरिक्ष शान्तिदायक हो। समुद्र के जल भी शान्तिदायक हों। हमारे लिये ओषधियें शान्तिदायक हों। ये सब पदार्थ हमारे लिये सुखकारी, शान्तिदायक हों और उपद्रवकारी कष्टप्रद न हों।

शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम् ।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥२॥

पहले २ प्रादुर्भूत हुए उपद्रवों और रोगों के पूर्व रूप हमारे लिये शान्तिदायक हों कष्टजनक न हों। हमारे किये विरुद्ध कार्य और न किये या प्रमादवश न किये हुए अवश्य कर्त्तव्य कार्य भी हमें शान्तिदायक हों, अर्थात् अनर्थजनक न हों। भूत, अतीतकाल और भव्य भविष्यत् काल दोनों भी हमें सुखप्रद हों। हमारे लिये सब ही शान्तिदायी, कल्याणकारी हों।

इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मसंशिता।
ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥३॥

जो यह परम, सबके पालन में समर्थ, सर्वोपरि विद्यमान, परमेश्वर में स्थित वाणी-रूप दिव्यशक्ति ब्रह्म, ब्रह्मवर्चस ब्रह्मचर्य के बल से अति बलवती है, जिससे ही अति घोर, भयानक कार्य किये जा सकते हैं उससे ही हमें सुखप्राप्ति हो।

इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥४॥

जो यह प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने योग्य ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मचर्य के बल से तीक्ष्ण होकर परम स्थान में स्थित है स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों का मन है जिससे ही घोर, क्रूरकर्म भी किये जा सकते हैं, उससे ही हमें शान्ति सुख प्राप्त हो।

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि। यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥५॥

ये जो प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त छठे मन सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय ब्रह्मचर्य के बल से अति उत्तम रूप से खूब तीक्ष्ण होकर मेरे हृदय में आत्मा में आश्रित हैं जिनके द्वारा घोर कार्य भी किया जाता है उनसे ही हमें शान्ति प्राप्त हो।

शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥६॥

यजु० ३६। ९।॥ ऋ० १। ९०।॥

हमें सबका स्नेही, सबको मरण से त्राण करने वाला पुरुष शान्तिदायक हो। सर्वश्रेष्ठ, सबके वरण करने योग्य, एवं सब

शत्रुओं का वारक पुरुष कल्याणकारी हो। व्यापक, सर्वत्र प्रभुता से सम्पन्न या व्यवस्थापक पुरुष हमें शान्तिदायक हो। ऐश्वर्य-वान् बृहती, वाणी का पालक विद्वान् पुरुष और दुःखों का नियामक, न्यायकारी पुरुष ये सब सदा हमें कल्याण सुख प्रदाता हों। अथवा ये सब विशेषण परमेश्वर के हैं। गुण भेद से सभी नाम परमात्मा के भी हैं।

शं नो मित्रः शंः वरुणः शं विवस्वांछमन्तकः ॥
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥७॥

ऋ० १। ६०। ६॥ यजु० ३६। ६॥

सबका स्नेही, सबका मरण से त्राता सर्वश्रेष्ठ, सबके वरण करने योग्य, सब दुःखों का वारक सुखकारी शान्तिदायक हो। विविध वस्तुओं, जीवों को प्राण देकर बसाने वाला या विविध ऐश्वर्यों का स्वामी पुरुष या सूर्य या परमेश्वर शान्ति प्रदान करे। अन्त करने वाला मृत्यु भी हमें शान्ति दे, हमारी पूर्णायु हो। पृथिवी और अन्तरिक्ष में होने वाले नाना उपद्रव और द्यौ, आकाश में विचरने वाले ग्रह भी हमें शान्तिदायक हों।

शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥८।

किन्हीं भी प्राकृतिक उद्वेगों से कंपाई गई भूमि हमारे लिये सुखकारी हो, हमें हानि कारक न हो। आकाश से भूमि पर गिरने वाले लघुग्रह शान्तिदायक हों। और जो भी वेग से पृथ्वी पर आकर गिरें वह भी हमें शान्तिदायक हों। गौएं जो विपरीतकाल या रोग के कारण रुधिर के समान दूध देती हों वे भी शान्ति दें। और अचाचेत फट जाने वाली भूमि भी शान्ति सुखकारी हो, हानि न पहुंचावे।

नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शंनो भिचाराः शमु सन्तु कृत्याः । शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥९॥

उल्का उपग्रहों से अभिहत, युक्त नक्षत्र हमारे लिये कल्याणकारी हो। दूसरों के हम पर गुप्त अभिचार, आक्रमण भी हमारे लिये शान्त ही रहें, न उठें न सफल हों। घातक क्रियाएं भी शान्त ही रहें। धोखा देकर गिर कर मारने, या भीतर विस्फोटक द्रव्य भरकर उड़ा देने के लिये खोदे हुए स्थान सुरंग या Mines हमारे लिये शान्त, निरुपद्रव, हानि रहित रहें। अन्य कपट के हिंसा के कार्य भी हमारे लिये शान्त रहें। पृथ्वी पर उल्काओं का गिरना शान्त ही रहे, उत्पन्न ही न हों।

शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥१०॥

चन्द्रमा से सम्बद्ध, चन्द्रमा से युक्त या चन्द्रमा को ग्रहण करने वाले भूमि की छाया आदि ग्रह हमें शान्ति दें। प्रकाश के नाशक आवरण से युक्त आदित्य भी शांति दे। जनोंके मृत्यु का कारण धूमकेतु ग्रह हमारे लिये शान्त,हानिरहित रहे। तीक्ष्ण प्रकाश वाले, प्रजा को रुलाने वाले नाना 'रुद्र' नामक केतु ग्रह अथवा प्राण अपान आदि ११ रुद्र भी शान्त रहें, उत्पात न करें।

शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥११॥

प्रजा के रुलाने वाले 'रुद्र' रूप ४४ वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालक निष्ठ पुरुष हमारे लिये शान्तिदायक हों। वसु नामक २४ वर्ष के ब्रह्मचारी हमारे लिये कल्याणकारी हों। आदित्य ४८ वर्ष के

बाल ब्रह्मचारी गण हमें सुख दें। अग्नि के समान तीक्ष्ण स्वभाव के पुरुष अथवा राजागण, क्षत्रियजन और अन्य विद्वान् लोग हमें सुख दें। ज्ञान प्रकाशक ज्ञानप्रद, तेजस्वी बड़े २ मन्त्र-द्रष्टा ऋषिजन हमारे लिये शान्तिदायक हों, देव विद्वान्गण और संसार के दिव्य पदार्थ शान्तिदायक हों। महान् लोकों का पालक परमेश्वर हमें शान्ति दे। अथवा रुद्र ११-प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीव। वसु आठ—अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, द्यौः, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और १२ आदित्य, १२ मास अग्नियें वैतानिक आदि पांच इत्यादि सब हमें शान्ति दें।

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्त ऋषयोऽग्नयः। तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु। विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२॥

महान्, सच्चिदानन्द परमेश्वर प्रजा का पालक सबका पोषक हिरण्यगर्भ समस्त लोक, ज्ञानमय समस्त वेद, ऋग्, यजुः साम, अथर्व एवं उनके व्याख्यान, सात ऋषि सात प्रकार के मन्त्रार्थद्रष्टा, अथवा शरीरस्थ सात इन्द्रियें और पांचों अग्नियें, अग्नि, विद्युत्, सूर्य, जाठर और ब्रह्म। इन सब में मेरे लिये कल्याण का मार्ग बना हो। इन्द्र परमेश्वर मुझे सुख प्रदान करे। वेदों का ज्ञाता ब्रह्मा मुझे सुख प्रदान करे। समस्त विद्वान् ज्ञानप्रद पुरुष मुझे सुख शान्ति दें। समस्त प्रकाशक पदार्थ या राजागण मुझे शान्ति प्रदान करें।

यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः। सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥१३॥

लोक में शरीरगत सातों इन्द्रियें और उन द्वारा सूक्ष्म ज्ञान के प्राप्त करने वाले विद्वान् ब्राह्मण जिन किन्हीं पदार्थों को भी शान्तिदायक जानें वे सब मेरे लिये कल्याणकारी हों। मुझे शान्ति प्राप्ति हो, मुझे अभय प्राप्त हो।

पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः। ताभिः शान्तिभिः सर्वं शान्तिभि शमयामोहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः॥१४

यजु० ३६। १७॥

पृथिवी, अन्तरिक्ष=वायु, द्यौ, आकाश जल, ओषधियां, वनस्पति, बड़े वृक्ष, समस्त देव=विद्वान् लोग, सब देव=दिव्य गुणवान् पदार्थ मेरे लिये शान्ति उत्पन्न करें। समस्त प्रकार की शान्तियों के साथ २ मेरा शान्तिमय आत्मा भी शान्त रूप धारण करे! उन शान्तियों से अन्यान्य सब प्रकार के शान्ति साधनों से हम लोग शान्तिमय परम सुख को प्राप्त हों। अथवा जो पदार्थ इस लोक में कष्टदायक, जो यहां क्रूर, हिंसाजनक, त्रासोत्पादक और जो यहां पाप दूर करने योग्य आत्मा का नाशक वह शान्त हो। वह सब कल्याणकारी हो। हमारे लिये सब ही शान्तिदायक हो।

—:)o(:—

वेदो नित्यमधीयताम्। (महर्षि मनु)

वेदों का नित्य पाठ करो।

ईश्वरीय ज्ञान—वेद

वेदोत्पादन ईश्वरस्य किं प्रयोजनमस्तीत्यत्र वक्तव्यम् ?

प्रश्न—वेदों के उत्पन्न करने में ईश्वर को क्या प्रयोजन था ?

उच्यते—वेदानामनुत्पादने खलु तस्य किं प्रयोजनमस्तीति ?, अस्योत्तरं तु वयं न जानीमः । सत्यमेवमेतत् । तावद्वेदोत्पादने यदस्ति प्रयोजनं तच्छृणुत । ईश्वरेऽनन्ता विद्यास्ति न वा ?, अस्ति । सा किमर्थास्ति ?, स्वार्था । ईश्वरः परोपकारं न करोति किम् ?, करोति तेन किम् ?, तेनेदमस्ति, विद्या स्वार्था परार्था च भवति तस्यास्तद्विषयत्वात् ।

उत्तर—मैं तुम से पूछता हूं कि वेदों के उत्पन्न नहीं करने में उसको क्या प्रयोजन था ? जो तुम यह कहो कि इसका उत्तर हम नहीं जान सकते तो ठीक है, क्योंकि वेद तो ईश्वर की नित्य विद्या है उसकी उत्पत्ति वा अनुत्पत्ति हो ही नहीं सकती। परन्तु हम जीव लोगों के लिये ईश्वर ने जो वेदों का प्रकाश किया है सो उसकी हम पर परम कृपा है। जो वेदोत्पत्ति का प्रयोजन है सो आप लोग सुनें।

प्रश्न—ईश्वर में अनन्त विद्या है वा नहीं ?

उत्तर—है।

प्रश्न—सो उसकी विद्या किस प्रयोजन के लिये है ?

उत्तर—अपने ही लिये, जिससे सब पदार्थों का रचना और जानना होता है।

प्रश्न--अच्छा तो मैं आपसे पूछता हूं कि ईश्वर परोपकार को करता है वा नहीं ?

उत्तर--ईश्वर परोपकारी है। इससे क्या आया ?, इससे यह बात आती है कि विद्या जो है सो स्वार्थ और परार्थ के लिये होती है, क्योंकि विद्या का यही गुण है कि स्वार्थ और परार्थ इन दोनों को सिद्ध करना।

यद्यस्मदर्थमीश्वरो विद्योपदेशं न कुर्यात्तदान्यतरपक्षे सा निष्फला स्यात्। तस्मादीश्वरेण स्वविद्याभूतवेदस्योपदेशेन सप्रयोजनता संपादिता। परमकारुणिको हि परमेश्वरोऽस्ति, पितृवत्। यथा पिता स्वसन्ततिं प्रति सदैव करुणां दधाति, तथेश्वरोऽपि परमकृपया सर्वमनुष्यार्थं वेदोपदेशमुपचक्रे। अन्यथान्धपरम्परया मनुष्याणां धर्मार्थकाममोक्षसिद्ध्या विना परमानन्द एव न स्यात्। यथा कृपायमाणेनेश्वरेण प्रजासुखार्थं कन्दमूलफलतृणादिकं रचितं, स कथं न सर्वसुखप्रकाशिकां सर्वविद्यामयीं वेदविद्यामुपदिशेत् ? किञ्च ब्रह्माण्डस्थोत्कृष्टसर्वपदार्थप्राप्त्या यावत्सुखं भवति न तावत् विद्याप्राप्तिसुखस्य सहस्रतमेनांशेनापि तुल्यं भवत्यतो वेदोपदेश ईश्वरेण कृत एवास्तीति निश्चयः।

जो परमेश्वर अपनी विद्या का हम लोगों के लिये उपदेश न करे तो विद्या से जो परोपकार करना गुण है सो उसका नहीं रहे। इससे परमेश्वर ने अपनी वेदविद्या का हम लोगों के लिये

उपदेश करके सफलता सिद्ध करी है, क्योंकि परमेश्वर हम लोगों को माता-पिता के समान है। हम सब लोग जो उसकी प्रजा हैं उन पर नित्य कृपादृष्टि रखता है। जैसे अपने सन्तानों के ऊपर पिता और माता सदैव करुणा को धारण करते हैं कि सब प्रकार से हमारे पुत्र सुख पावें, वैसे ही ईश्वर सब मनुष्यादि सृष्टि पर कृपादृष्टि सदैव रखता है, इससे ही वेदों का उपदेश हम लोगों के लिये किया है। जो परमेश्वर अपनी वेदविद्या का उपदेश मनुष्यों के लिये न करता तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि किसी को यथावत् प्राप्त न होती, उसके बिना परम आनन्द भी किसी को नहीं होता। जैसे परमकृपालु ईश्वर ने प्रजा के सुख के लिये कन्द, मूल, फल और घास आदि छोटे २ भी पदार्थ रचे हैं सो ही ईश्वर सब सुखों के प्रकाश करने वाली, सब सत्यविद्याओं से युक्त वेदविद्या का उपदेश भी प्रजा के सुख के लिये क्यों न करता ? क्योंकि जितने ब्रह्माण्ड में उत्तम पदार्थ है उनकी प्राप्ति से जितना सुख होता है सो सुख विद्याप्राप्ति होने के सुख से हजारहवें अंश के भी समतुल्य नहीं हो सकता। ऐसा सर्वोत्तम विद्या पदार्थ जो वेद है उसका उपदेश परमेश्वर क्यों न करता ? इससे निश्चय करके यह जानना कि वेद ईश्वर के ही बनाये हैं।

ईश्वरेण लेखनीमसीपात्रादिसाधनानि वेदपुस्तकलेखनाय कुतो लब्धानि ?

वेदों के रचने और वेद पुस्तक लिखने के लिये ईश्वर ने लेखनी, स्याही और दवात आदि साधन कहां से लिये, क्योंकि उस समय में कागज आदि पदार्थ तो बने ही न थे ?

अत्रोच्यते—अह ह ह ! महतीयं शंका भवता कृता,

विना हस्तपादाद्यवयवैः काष्ठलोष्ठादिसामग्रीसाधनैश्च यथेश्वरेण जगद्रचितं तथा वेदा अपि रचिताः, सर्वशक्तिमतीश्वरे वेदरचनं प्रत्येवं माशङ्कि। किन्तु पुस्तकस्था वेदास्तेनादौ नोत्पादिताः। किं तर्हि ? ज्ञानमध्ये प्रेरिताः। केषाम् ? अग्निवाय्वादित्याङ्गिरसाम्। ते तु ज्ञानरहिता जडाः सन्ति ? मैवं वाच्यं, सृष्ट्यादौ मनुष्यदेहधारिणस्ते ह्यासन्। कुतः जडे ज्ञानकार्यासम्भवात्। यत्रार्थासम्भवोऽस्ति तत्र लक्षणा भवति। तद्यथा कश्चिदाप्तः कञ्चित् प्रति वदति मञ्चाः क्रोशन्तीति। अत्र मञ्चस्था मनुष्याः क्रोशन्तीति विज्ञायते। तथैवात्रापि विज्ञायताम्। विद्याप्रकाशसंभवो मनुष्येष्वेव भवितुमर्हतीति।

उत्तर—वाह वाह वाह जी ! आपने बड़ी शंका करी, आपकी बुद्धि की क्या स्तुति करें। अच्छा आपसे मैं पूछता हूं कि हाथ पग आदि अंगों के बिना तथा काष्ठ लोह आदि सामग्री साधनों के विना ईश्वर ने जगत् को क्योंकर रचा है ? जैसे हाथ आदि अवयवों के बिना उसने सब जगत् को रचा है वैसे ही वेदों को भी सब साधनों के विना रचा है, क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। इससे ऐसी शंका उसमें आपको करनी योग्य नहीं। परन्तु इसके उत्तर में इस बात को जानो कि वेदों को पुस्तकों में लिख के सृष्टि की आदि में ईश्वर ने प्रकाशित नहीं किये थे।

प्रश्न—तो किस प्रकार से किये थे ?

उत्तर—ज्ञान के बीच में।

प्रश्न—किनके ज्ञान में ?

उत्तर—अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा के।

प्रश्न—वे तो जड़ पदार्थ हैं ?

उत्तर—ऐसा मत कहो, वे सृष्टि की आदि में मनुष्यदेहधारी हुए थे, क्योंकि जड़ में ज्ञान के कार्य का असम्भव है, और जहां २ असम्भव होता है वहां २ लक्षणा होती है। जैसे किसी सत्यवादी विद्वान् पुरुष ने किसी से कहा कि 'खेतों में मंचान पुकारते हैं', इस वाक्य में लक्षणा से यह अर्थ होता है कि मञ्चान के ऊपर मनुष्य पुकार रहे हैं, इसी प्रकार से यहां भी जानना कि विद्या के प्रकाश होने का सम्भव मनुष्यों में ही हो सकता है, अन्यत्र नहीं।

एषां ज्ञानमध्ये प्रेरयित्वा तद्द्वारा वेदाः प्रकाशिताः। सत्यमेवमेतत्। परमेश्वरेण तेभ्यो ज्ञानं दत्तं, ज्ञानेन तैर्वेदानां रचनं कृतमिति विज्ञायते ?

प्रश्न—सत्य बात है कि ईश्वर ने उनको ज्ञान दिया होगा और उनने अपने ज्ञान से वेदों का रचन किया होगा ?

मैवं विज्ञायि। ज्ञानं किं प्रकारकं दत्तम् ? वेदप्रकारकम्। तदीश्वरस्य वा तेषाम् ?, ईश्वरस्यैव। पुनस्तेनैव प्रणीता वेदा आहोस्वित्तैश्च ? यस्य ज्ञानं तेनैव प्रणीताः। पुनः किमर्था शंका कृता तैरेव रचिता इति ? निश्चयकरणार्था।

उत्तर—ऐसा तुमको कहना उचित नहीं। क्योंकि तुम यह भी जानते हो कि ईश्वर ने उनको ज्ञान किस प्रकार का दिया था।

उत्तर—उनको वेदरूप ज्ञान दिया था।

प्रश्न—अच्छा तो मैं आपसे पूछता हूं कि वह ज्ञान ईश्वर

का है वा उनका ?

उत्तर – वह ज्ञान ईश्वर का ही है।

प्रश्न –फिर आपसे पूछता हूँ कि वेद ईश्वर के बनाये हैं वा उनके ?

उत्तर—जिसका ज्ञान है उसी ने वेदों को बनाया।

प्रश्न—फिर उन्हीं ने वेद रचे हैं यह शंका आपने क्यों की थी ?

उत्तर—निश्चय करने और कराने के लिये।

ईश्वरो न्यायकार्यस्ति वा पक्षपाती ? न्यायकारी । तर्हि चतुर्णामेव हृदयेषु वेदाः प्रकाशिताः कुतो न सर्वेषामिति ?

प्रश्न--ईश्वर न्यायकारी है वा पक्षपाती ?

उत्तर - न्यायकारी।

प्रश्न—जब परमेश्वर न्यायकारी है तो सबके हृदयों में वेदों का प्रकाश क्यों नहीं किया, क्योंकि चारों के हृदयों में प्रकाश करने से ईश्वर में पक्षपात आता है ?

अत्राह—अत ईश्वरे पक्षपातस्य लेशोऽपि नैवागच्छति, किन्त्वनेन तस्य न्यायकारिणः परमात्मनः सम्यङ् न्यायः प्रकाशितो भवति । कुतः ? न्यायेत्यस्यैव नामास्ति यो यादृशं कर्म कुर्यात्तस्मै तादृशमेव फलं दद्यात्। अत्रैवं वेदितव्यम्—तेषामेव पूर्वपुण्यमासीद्यतः खल्वेतेषां हृदये वेदानां प्रकाशः कर्त्तुं योग्योऽस्ति ।

उत्तर—इससे ईश्वर में पक्षपात का लेश कदापि नहीं आता किन्तु उस न्यायकारी परमात्मा का साक्षात् न्याय हो प्रकाशित होता है। क्योंकि न्याय उसको कहते हैं कि जो जैसा कर्म करे

उसको वैसा ही फल दिया जाय। अब जानना चाहिये कि उन्हीं चार पुरुषों का ऐसा पूर्वपुण्य था कि उनके हृदय में वेदों का प्रकाश किया गया।

किं च ते तु सृष्टेः प्रागुत्पन्नास्तेषां पूर्वपुण्यं कुत आगतम् ?

प्रश्न--वे चार पुरुष तो सृष्टि की आदि में उत्पन्न हुए थे, उनका पूर्वपुण्य कहां से आया ?

अत्र ब्रूमः—सर्वे जीवाः स्वरूपतोऽनादयस्तेषां कर्म्माणि सर्वं कार्य्यं जगच्च प्रवाहेणैवानादीनि सन्तीति। एतेषामनादित्वस्य प्रमाणपूर्वकं प्रतिपादनमग्रे करिष्यते।

उत्तर—जीव, जीवों के कर्म और स्थूल कार्य्य जगत् ये तीनों अनादि हैं, जीव और कारणजगत् स्वरूप से अनादि हैं, कर्म और स्थूल कार्य्य जगत् प्रवाह से अनादि हैं। इसकी व्याख्या प्रमाणपूर्वक आगे लिखी जायगी। --महर्षि दयानन्द सरस्वती

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में)
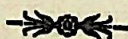
वेदों का रहस्य जानने के लिए महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका और सत्यार्थप्रकाश का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये। --सम्पादक

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है। —आर्यसमाज का दूसरा नियम

वेद, क्या ? क्यों ?, और कैसे ?

[लेखक—आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री]

प्रश्न—वेद क्या है ?

उत्तर—वेद ज्ञान का नाम है और वह ईश्वरीय ज्ञान है।

प्रश्न—यह कैसे ?

उत्तर—वेद शब्द विद् धातु से निष्पन्न है। विद् धातु के चार अर्थ हैं। ज्ञान' विचार, सत्ता और लाभ। इससे भिन्न-भिन्न तात्पर्य निकलते हैं। वेद ज्ञान का नाम है यह ज्ञान विचारमय है। और सत्ता सम्बन्धी है तथा इससे मोक्ष का लाभ एवं ऐहिक ऐश्वर्यों का लाभ होता है। यह भी कहा जा सकता है कि वेद वह ज्ञान है जिसके विचार से अपनी सत्ता स्थिर होती है और जगत के मूल में स्थित सत्तावों का ज्ञान होता है तथा ऐहिक सुखैश्वर्य और मोक्ष का लाभ होता है।

प्रश्न—वेद में किस प्रकार का ज्ञान है ?

उत्तर—वेद में सब सत्य विद्याओं का ज्ञान है।

प्रश्न—विद्या क्या है ? और अविद्या क्या है ?

उत्तर—पृथिवी तृण से लेकर परमेश्वर पर्यन्त जो पदार्थ जैसे हैं उनको वैसा ही जानना और उसके अनुसार ही उनसे लाभ लेना विद्या है और इससे विपरीत का नाम अविद्या है ?

प्रश्न—सत्य विद्यायें कौन कौन सी हैं ?

उत्तर—सत्यविद्यायें अनेक हैं और विविध भेदों वाली है। जैसे गणित, भौतिकी रसायन, ज्योतिष, दर्शन, अध्यात्म, सृष्टि-विद्या यज्ञ विज्ञान, वार्ता, आदि आदि।

प्रश्न—जब सत्य विद्यायें अनेक हैं तो फिर इनका विस्तार इन चार वेदों में ही कैसे हो सकता है ?

उत्तर--सब सत्यविद्यायें वेद में मूलरूप में वा बीज रूप में है। विस्तार प्रयोग, अन्वेषण और दर्शन से जाना जाता है।

प्रश्न—वेद जब चार हैं तो फिर सत्यविद्यावों का समावेश इनमें किस प्रकार किया गया है?

उत्तर—चार वेद को चार काण्डों में विभक्त किया गया है? ये चार विषय कहे जाते हैं। इन्हीं में सभी सत्य विद्यायें आ जाती है।

प्रश्न –वे चार विषय कौन से हैं? और किस वेद का कौन सा विषय है?

उत्तर—वे चार विषय-विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान है। इनमें विज्ञान ऋग्वेद का, कर्म यजुर्वेद का, उपासना सामवेद का और ज्ञान अथर्व वेद का विषय है। इन चारों में समस्त विद्यायें आ जाती हैं।

प्रश्न--सब सत्य विद्यायें इनमें किस प्रकार आ जाती है?

उत्तर—संसार में प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ की अपनी मूर्त्ति है। यह मूर्त्ति वा भेदक पित्ति छन्दों से बंधी है। वेद छन्दोमय है। इसीलिए तैत्तिरीय आरण्यक आदि का कथन है कि मूर्त्तपदार्थ ऋचाओं से सम्बद्ध हैं। सारी गतियां यजुः से समुद्भूत और समस्त तेज वा शक्तियां साम पर आधारित हैं। अथर्व महत् की महिमा रखता है। विज्ञान के अन्दर समस्त विज्ञान आजाता है। कर्म के अन्दर समस्त उत्तम कर्म एवं क्रिया कलाप आ जाते हैं। उपासना में एतत्सम्बन्धी सारी विद्यायें आ जाती है। ज्ञान में अध्यात्म की समस्त शाखायें आ जाती हैं। अतः चारों वेदों के नाम और विषयों में सब सत्य विद्याओं का समावेश हो जाता है और ये नाम और विषय इसी आधार पर रखे भी गए हैं।

प्रश्न—वेद में सब सत्य विद्यायें हैं तो क्या कभी इनका

विस्तार भी प्रयोग में देखा गया ?

उत्तर--हां ! देखा गया। वह इस प्रकार है। वेद के छः अङ्ग हैं—शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष। इन छः अङ्गों में विद्या का ही विस्तार है। इसी प्रकार वेद के चार उपवेद हैं। अर्थवेद, धनुर्वेद, आयुर्वेद और गान्धर्व-वेद। यह भी विद्या का ही विस्तार और प्रयोग है। वेद के छः उपाङ्ग हैं। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त। ये भी विद्या ही हैं। उपनिषदें भी अध्यात्म विद्या का विस्तार है। इसी प्रकार अनेक लुप्त शास्त्र भी थे। ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों के व्याख्यान हैं। ये भी विज्ञान के विविध विषयों पर प्रकाश डालते हैं। वेदों की अनेक शाखायें भी विद्या के विस्तार को ही बताती है (मेरे ग्रन्थ शिक्षण तरंगिणी में "संस्कृत साहित्य में ग्रन्थ निर्माण" में विविध विद्याओं के ग्रन्थों का परिज्ञान देखा जा सकता है।

प्रश्न—वेद की शाखायें कितनी हैं और क्या है ?

उत्तर—वेद की शाखायें ११२७ हैं। ये वेदों के व्याख्यान हैं। वेदार्थ को प्रकट करती हैं ?

प्रश्न—ब्राह्मण क्या हैं ?

उत्तर—वेद की शाखायें ११२७ हैं। ये वेदों के व्याख्यान हैं। वेदार्थ को प्रकट करती हैं।

उत्तर—यह ठीक नहीं। शाखा और ब्राह्मण वेदो के व्याख्यात हैं। वेद नहीं। (इस शाखा और ब्राह्मण सम्बन्धी विस्तृत विचार को 'दयानन्द सिद्धान्त प्रकाश में देखें)।

प्रश्न—क्या सभी शाखायें और ब्राह्मण उपलब्ध हैं।

उत्तर—कुछ थोड़ी शाखायें और ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध हैं। सभी नहीं।

प्रश्न—यह सारा विस्तार क्यों ?

उत्तर यह सत्य विद्या के ज्ञान के लिए प्रयोग और विस्तार है।

प्रश्न—यह तो ठीक है कि वेद ज्ञान है, परन्तु वह ईश्वरीय ज्ञान क्यों ?

उत्तर—इसलिए कि वह प्रत्येक सृष्टि की आदि में ईश्वर की प्रेरणा से ऋषियों पर आता है और मानव उसे प्राप्त कर लाभान्वित होता है।

प्रश्न—वेद का ज्ञान तो भाषामय और विचारमय है फिर यह ईश्वर द्वारा मनुष्य पर कैसे आ सकता है ?

उत्तर—भाषा वाह्य विचार का नाम है और आंतरिक भाषा है। अतः कोई भी विचार बिना भाषा के नहीं रह सकता है। इसलिए ईश्वर ने जहां विचार वा ज्ञान की प्रेरणा दी वहां भाषा की भी दी। अन्यथा आदिम अवस्था में मनुष्य भाषा और ज्ञान से शून्य होने से अपने कार्यकलाप नहीं चला सकता था।

प्रश्न—यह प्रेरणा की समस्या कैसे समझी जावे ?

उत्तर—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—ये तीनों अनादि है—यही विचार इस समस्या के समझाने में सहायक है।

प्रश्न—ईश्वर निराकार है, फिर वह ज्ञान किस प्रकार दे सकता है ?

उत्तर—जिस प्रकार निराकार मन में विचार उठते और भाषा के वाक्य बनते हैं उसी प्रकार निराकार ईश्वर ने भी इन्हीं ऋषियों के हृदय में प्रेरित किया।

प्रश्न—जब ईश्वर सर्वव्यापक है तो फिर यह प्रेरणा चार ऋषियों पर ही क्यों आई सभी पर आनी चाहिए थी, फिर

ऐसा क्यों नहीं ?

उत्तर--शीशी के सामने शरीर का जितना भाग है उतने का ही प्रतिविम्ब दिखाई देता है। शीशे के सामने जो नहीं उसे शीशा ग्रहण नहीं करता। इसी प्रकार ईश्वर का ज्ञान तो उसके सर्वव्यापक होने से था सर्वत्र परन्तु चार ऋषियों के हृदय ही शीशे की भांति स्वच्छ और ग्रहण करने की शक्ति से युक्त थे अतः उन पर ही इस प्रेरणा का प्रकाश हुआ अन्यों पर नहीं।

प्रश्न--ये चार ऋषि कौन हैं ?

उत्तर--ये अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा हैं।

प्रश्न--ये ही चार क्यों प्रेरणा पाने के योग्य थे ?

उत्तर--ये मुक्ति के अनन्तर संकल्पिक योनि में उत्पन्न हुये थे अतः इस योग्यता वाले थे।

प्रश्न--क्या प्रत्येक सृष्टि में वेद की प्रेरणा ऋषियों पर होती है ?

उत्तर—प्रत्येक सृष्टि में वेद की प्रेरणा ऋषियों द्वारा ही मिलती है।

प्रश्न--तो क्या इन ऋषियों ने इस ज्ञान से कुछ नहीं मिलाया ?

उन्होंने अपनी तरफ से कुछ नहीं मिलाया। जिस प्रकार ध्वनि विस्तारक यन्त्र, रेडियो और ग्रामोफोन अपनी तरफ से कुछ मिलाते नहीं वक्ता की ही बात को प्रतिध्वनित करते हैं वैसे ही इन्होंने भी कुछ मिलाया नहीं, परमात्मप्रदत्त ज्ञान को ही लोगों को दिया।

प्रश्न--तो क्या वे मिला नहीं सकते थे ?

उत्तर--नहीं ? क्योंकि उनके अन्दर वेद ज्ञान के अतिरिक्त कोई दूसरा ज्ञान वा अज्ञान था ही नहीं कि जिसे वे मिला

सकें। अज्ञान और अशुद्धता उनमें थे ही नहीं। फिर क्या मिलाते और कैसे मिलाते?

प्रश्न--क्या उनका कोई इतिहास है कि जिससे ज्ञात हो सके कि वे इतने पवित्रात्मा थे?

उत्तर- इतिहास तो बाद को लिखा जाता है जीवनवृत्त माता-पिता आदि से आरम्भ होता है। वे अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न हुये और ऋषि उत्पन्न हुये। ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त होने से जीवन्मुक्त हो गये और प्राप्त ज्ञान का अन्य ऋषियों को अपने समाधिबल से उपदेश देकर स्वयं मृत्यु हो जाने से मुक्त हो गए। यह समय और कार्यकलाप इतना थोड़ा है कि इसका इतिवृत्त लिखा ही नहीं जा सकता था। यह भी आवश्यक नहीं कि सबका इतिवृत्त लिखा हुआ मिले ही।

प्रश्न--उन्होंने वेद ज्ञान किसको दिया?

उत्तर—ब्रह्मा ऋषि को।

प्रश्न—इन चारों को एक एक वेद का ही ज्ञान मिला वा चारों को चारों वेदों का?

उत्तर--समाधिबल से चारों ने एक एक वेद और उसके अर्थ का ज्ञान ब्रह्मा को दिया परन्तु प्रभु की प्रेरणा में चारों को ज्ञान चारों वेदों का मिला। जिससे कि वे आपस में परस्पर के ज्ञानों के याथातथ्य का प्रमाणीकरण कर सकें।

प्रश्न--महर्षि दयानन्द ने तो लिखा है कि एक एक ऋषि को एक एक वेद का ज्ञान हुआ, फिर आप यह क्यों कह रहे हैं?

उत्तर—महर्षि की बात ही ठीक है और उसी को कह रहा हूँ। ज्ञान की प्राप्ति का विस्तार एक एक वेद का एक एक ऋषि ने किया और उसी दृष्टि से महर्षि ने लिखा भी है। परन्तु चारों को चारों वेदों का ज्ञान था और हुआ इसमें महर्षि का विरोध

नहीं और यह सर्वथा युक्ति संगत है।

प्रश्न—वेद प्रेरणा में पद, वाक्य पूर्वक प्रकट हुये वा अन्य रूप में ?

उत्तर—वेद मन्त्र संहिता रूप में प्रकट हुये और पद एवं दूसरे मन्त्र आदि विभाग बाद में विद्वानों के आधार पर जाने जाते हैं।

प्रश्न—जब वाक्य और पद आदि का विभाग नहीं तो फिर अर्थ कैसे जाना गया ?

उत्तर—पद आदि का विभाग करने पर भी अर्थ जाना जाता है तथा पूरे वाक्य का भी पूरा अर्थ बिना विभाग के भी जाना जाता है।

प्रश्न—ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी क्या है ?

उत्तर—ईश्वरीय ज्ञान वह है जो सृष्टि के नियम के अनुकूल हो। उसकी निम्न कसौटियां हैं।

(१) जिससे पूर्व कोई ज्ञान व भाषा नहीं। तथा सर्वप्रथम हो
(२) जो सृष्टि के पदार्थों को उसी रूप में बतावें जिस रूप में वे हैं।
(३) जो किसी देश विदेश की भाषा में न हो।
(४) जिसमें किसी भाषा सम्बन्धी वा व्याकरण सम्बन्धी संकोच न हो।
(५) जो प्रत्येक सृष्टि में प्रेरणा से प्राप्त होता हो।
(६) जिससे समस्त भाषाओं का बाद में विस्तार हो।
(७) जो किसी एक देश वा जाति के लिए न हो।

प्रश्न—वेद तो संस्कृत भाषा में है और यह भारत की भाषा है ?

उत्तर—वेद संस्कृत भाषा में नहीं बल्कि वेद की भाषा में

है। वेद की भाषा वैदिक संस्कृत है जो कभी धरा पर मानव द्वारा न बोली गई न बोली ही जा सकती है। यदि उसका कोई शब्द बोला जावे तो वह लौकिक हो जावेगा। तथा वैदिक नहीं रहेगा। संस्कृत वाला भी वेद को नहीं समझ सकता है जब तक वेद की भाषा न पढ़े। अतः वेद संस्कृत भाषा में भी नहीं है। वैदिक भाषा का संकोच आदिकरके दूसरी भाषायें बनी अतः संस्कृत उसका प्रथम सकोच होने से ऐसा मालूम पड़ता है कि वह वेद की भाषा से मिलती जुलती है।

प्रश्न--फिर ब्रह्मा के वेद ज्ञान प्राप्त कर लेने पर अर्थ आदि का विस्तार किस प्रकार हुआ?

उत्तर--समाधिबल और ऊह बल से ऋषि मुनियों ने वेदों के अर्थों को समझा और उसका परिज्ञान कराया तथा अंग आदि की रचना की।

प्रश्न--वेदार्थ की प्रक्रिया क्या है?

उत्तर--निरुक्त, ब्राह्मण ग्रन्थों, और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों ने जो प्रक्रिया बताई है और वर्तमान युग के महान् आचार्य भगवान् दयानन्द ने जिस प्रक्रिया का अपने ग्रन्थों में प्रतिपादन किया है वही वेदार्थ की विशुद्ध प्रक्रिया है। (इसका विस्तार वैदिक ज्योति और वैदिक इतिहास विमर्श में देखा जा सकता है।)

प्रश्न - वेदार्थ किन प्रक्रियाओं में होता है?

उत्तर--त्रिविध प्रक्रियाओं में।

प्रश्न--वे त्रिविध प्रक्रिया क्या है?

उत्तर--वे है आधियाज्ञिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक

प्रश्न--क्या इन प्रक्रियाओं के आधार पर भाष्य हुये हैं?

उत्तर--हुये हैं। ऋषियों के मंत्रार्थ इन्हीं के आधार पर हैं।

तथा भगवान् दयानन्द का भाष्य इन्हीं के आधार पर है।

प्रश्न—क्या सायण महीधर आदि के भाष्य ठीक नहीं ?

उत्तर—ये ठीक नहीं है ? ये वेद की प्रक्रियाओं और आर्ष परम्परा के विरुद्ध है और अनर्गल भी। इनसे प्राचीन विद्वानों के भाष्यों में भी कुछ आर्ष परम्परा पाई जाती है। परन्तु सायण, महीधर के भाष्य में इसका अभाव है।

प्रश्न—सर्वोत्तम वेद भाष्य कौन है ?

उत्तर—महर्षि दयानन्द का वेद भाष्य सर्वोत्तम है।

प्रश्न—वेद भाष्य कौन कर सकता है।

उत्तर—जिसमें समाधि बल हो और ऊह शक्ति हो। अथवा जो ऊह शक्ति से सम्पन्न हो।

प्रश्न—यह ऊह शक्ति क्या है ?

उत्तर—यह भूयोविद्यता है, निरुक्त ब्राह्मणप्रवीणता है और अङ्गोपाङ्ग निपुणता है। इसी का दूसरा नाम तर्क ऋषि भी है।

प्रश्न—इतने पवित्र ज्ञान वेद का कोई पर्व भी है वा नहीं ? कथा और वेद ज्ञान का ही विस्तार होना चाहिए।

उत्तर श्रावणी पर्व वेद का ही पर्व है। इस पर वेद की कथा और वेद ज्ञान का ही विस्तार होना चाहिए।

प्रश्न—इसका यह रूप तो विगड़ चुका है। फिर ऐसा क्यों ?

उत्तर—इसका रूप ठीक करना आर्यसमाज का कार्य है। इसीलिए वह वेद सप्ताह मनाता है।

प्रश्न—वेद के ज्ञान के विस्तार की यह प्रेरणा किस ऋषि ने दी।

उत्तर—जैमिनि के बाद साक्षाद्धर्मा ऋषि दयानन्द ने यह प्रेरणा दी।

—:)o(:—

वैदिक राज्य-व्यवस्था

तीन सभा

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि । अपश्यमत्र मनसा जगन्वान् व्रते गन्धर्वां अपि वायुकेशान् ॥

ऋ० अ० ३ । अ० २ । व० । २४ । मं० १ ॥

तीन प्रकार की सभा ही को राजा मानना चाहिये, एक मनुष्य को कभी नहीं । वे तीनों ये हैं—प्रथम राज्यप्रबन्ध के लिये एक 'आर्य्यराजसभा', कि जिससे विशेष करके सब राज-कार्य्य ही सिद्ध किये जावें, दूसरी 'आर्य्यविद्यासभा', कि जिससे सब प्रकार की विद्याओं का प्रचार होता जाय, तीसरी आर्य्य-धर्मसभा', कि जिससे धर्म का प्रचार और अधर्म की हानि होती रहे । इन तीन सभा से अर्थात् युद्ध में सब शत्रुओं को जीत के नाना प्रकार के सुखों से विश्व को परिपूर्ण करना चाहिये ॥

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि ।
मा त्वा हिꣳसीन्मा मा हिꣳसीः ॥

य० अ० २० । मं० १ ॥

हे राज्य के देने वाले परमेश्वर ! आप ही राज्यसुख के परम कारण हैं । आप ही राज्य के जीवनहेतु हैं, तथा क्षत्रियवर्ण के राज्य का कारण और जीवनहेतु हमको भी बनाओ । हे जग-दीश्वर ! सब प्रजा आपको छोड़ के किसी दूसरे को अपना राजा कभी न माने, और आप भी हम लोगों को कभी मत

छोड़िये । किन्तु आप और हम लोग परस्पर सदा अनुकूल वर्त्तें।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं यज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥

य० अ० । मं० २५ ॥

जिस देश में उत्तम विद्वान् ब्राह्मण विद्यासभा, और राजसभा विद्वान् शूरवीर क्षत्रिय लोग, ये सब मिल के राजकामों को सिद्ध करते हैं, वही देश धर्म और शुभ क्रियाओं से संयुक्त हो के सुख को प्राप्त होता है। जिस देश में परमेश्वर की आज्ञापालन और अग्निहोत्रादि सत्क्रियाओं से वर्त्तमान विद्वान् होते हैं, वही देश सब उपद्रवों से रहित होके अखण्ड राज्य को नित्य भोगता है ॥

—महर्षि दयानन्द

न्याय पूर्वक राज्य

प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु । प्रत्यंगेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्यो। प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥

य० अ० २० । मं० १० ॥

जो मनुष्य इस प्रकार के उत्तम पुरुषों की सभा से न्यायपूर्वक राज्य करते हैं, उनके लिये परमेश्वर प्रतिज्ञा करता है कि—हे मनुष्यो ! तुम लोग धर्मात्मा होके न्याय से राज्य करो, क्योंकि जो धर्मात्मा पुरुष हैं, मैं उनके क्षात्रधर्म और सब राज्य में प्रकाशित रहता हूं, और वे सदा मेरे समीप रहते हैं। उनकी सेना के अश्व और गौ आदि पशुओं में भी मैं स्वसत्ता से प्रतिष्ठित रहता हूं। तथा सब सेना, राजा के अङ्गों और उनके

आत्माओं के बीच में भी सदा प्रतिष्ठित रहता हूं। उनके प्राण और पुष्ट व्यवहारों में भी सदा व्यापक रहता हूं। जितना सूर्य्यादि प्रकाशरूप और पृथिव्यादि अप्रकाशरूप जगत् तथा जो अश्वमेधादि यज्ञ हैं, इन सबके बीच में भी मैं सर्वदा व्यापक होने से प्रतिष्ठित रहता हूं। इस प्रकार से तुम लोग मुझको सब स्थानों में परिपूर्ण देखो। जिन लोगों की ऐसी निष्ठा है, उनका राज्य सदा बढ़ता रहता है॥

इमं देवा असपत्नꣳसुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा॥

य० अ० ९। मं० ४०॥

अब ईश्वर सब मनुष्यों को राज्यव्यवस्था के विषय में आज्ञा देता है कि—हे विद्वान् लोगो! तुम इस राजधर्म को यथावत् जानकर अपने राज्य का ऐसा प्रबन्ध करो, कि जिससे तुम्हारे देश पर कोई शत्रु न आ जाय। हे शूरवीर लोगो! अपने क्षत्रियधर्म, चक्रवर्ति राज्य, श्रेष्ठ कीर्त्ति, सर्वोत्तम राज्य-प्रबन्ध के अर्थ, सब प्रजा को विद्वान् करके ठीक-ठीक राज्य-व्यवस्था में चलाने के लिये, तथा बड़े ऐश्वर्य सत्य न्याय के प्रकाश करने के अर्थ अच्छे २ राज्य सम्बन्धी प्रबन्ध करो, कि जिनसे सब मनुष्यों को उत्तम सुख बढ़ता जाय॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्। ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा॥

अथर्व० कां० ६। अनु० १०। सू० ९७। मं० ३।

ईश्वर सब मनुष्यों को उपदेश करता है कि—हे बन्धु

लोगो ! हे शूरवीर ! न्याय और दृढ़भक्ति से अनन्त बलवान् परमेश्वर को इष्ट करके, शूरवीर लोगों को सदा आनन्द में रक्खो। तुम लोग अत्यन्त उग्र परमेश्वर के सहाय से एकसम्मति होकर, दुष्टों को युद्ध में जीतने का उपाय रचा करो। जिसने सब भूगोल तथा सब के मन और इन्द्रियों को जीत रक्खा है, प्राण जिसके बाहु और जो हम सबको जिताने वाला है, उसी को इष्ट जान के हम लोग अपना राजा मानें। जो अपने अनन्त पराक्रम से दुष्टों का पराजय करके हमको सुख देता है॥

सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः।
त्वयेद्गाः पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवम्॥

अथर्व० कां० १६। अनु० ७। सू० ५५। मं० ६॥

हे सभा के योग्य परमेश्वर ! आप हम लोगों की राजसभा की रक्षा कीजिये। हम लोग जो सभा के सभासद् हैं, सो आप की कृपा से सभ्यतायुक्त होकर अच्छी प्रकार से सत्य न्याय की रक्षा करें। हे सब के उपास्यदेव ! हम लोग आप ही के सहाय से आपकी आज्ञा का पालन करते रहें, जिससे सम्पूर्ण आयु को सुख से भोगें॥

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुरायेति सूक्तमुग्रवत्सहस्वत्तत्क्षत्रस्य रूपं, मन्द्र ओजिष्ठ इत्योजस्वत्तत्क्षत्रस्य रूपम्॥

राजाओं की सेना और सभा में जो पुरुष हों, वे सब दुष्टों पर तेजधारी, श्रेष्ठों पर शान्तरूप, सुख दुःख के सहन करने वाले और धन के लिए अत्यन्त पुरुषार्थी हों। क्योंकि दुष्टों पर क्रुद्ध स्वभाव और श्रेष्ठों पर सहनशील होना, यही राज्य का स्वरूप है। जो आनन्दित और पराक्रमयुक्त होना है, वही राज्य का स्वरूप है॥

बृहत्पृष्ठं भवति, क्षत्रं वै बृहत्क्षत्रेणैव तत्क्षत्रं समर्धयत्यथो क्षत्रं वै बृहदात्मा यजमानस्य निष्कैवल्यं तद्यद् बृहत्पृष्ठं भवति ॥

क्योंकि राज्य व्यवहार सबसे बड़ा है। इसमें शूरवीर आदि गुणयुक्त पुरुषों की सभा और सेना रखकर अच्छे प्रकार राज्य को बढ़ाना चाहिये।

ब्रह्म वै रथन्तरं क्षत्रं बृहद्, ब्रह्मणि खलु वै क्षत्रं प्रतिष्ठितं क्षत्रे ब्रह्म ॥

ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर और वेदविद्या से युक्त जो पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण है, वही राज्य के प्रबन्धों में सुखप्राप्ति का हेतु होता है। इसलिए अच्छे राज्य के होने से ही सत्यविद्या प्रकाश को प्राप्त होती है॥

ओजो वा इन्द्रियं वीर्य्यं पञ्चदश, ओजः क्षत्रं वीर्य्यं राजन्यस्तदेनमोजसा क्षत्रेण वीर्य्येण समर्द्धयति। तद्भारद्वाजं भवति भारद्वाजं वै बृहत् ॥

ऐत० पं० ८। अ० १। कं० २, ३॥

उत्तमविद्या और न्याययुक्त राज्य का नाम ओज है। जिसको दण्ड के भय से उल्लंघन वा अन्यथा कोई नहीं कर सकता। क्योंकि ओज अर्थात् बल का नाम क्षत्र और पराक्रम का नाम राजन्य है। ये दोनों जब परस्पर मिलते हैं, तभी संसार की उन्नति होती है।

तानहमनु राज्याय साम्राज्याय भौज्याय स्वाराज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय महाराज्यायाधिपत्याय स्वावश्यायातिष्ठायां रोहामीति ॥

इसके होने और परमेश्वर की कृपा से मनुष्य के राजकर्म, चक्रवर्त्तिराज्य, भोग का राज्य, अपना राज्य, विविध राज्य, परमेष्ठि राज्य, प्रकाशरूप राज्य, महाराज्य, राजों का अधिपति-रूप राज्य, और अपने वश का राज्य इत्यादि उत्तम-उत्तम सुख बढ़ते हैं ॥

नमो ब्रह्मणे नमो ब्रह्मणे नमो ब्रह्मण इति त्रिष्कृत्वो ब्रह्मणे नमस्करोति । ब्रह्मण एव तत्क्षत्रं वशमेति, तद्यत्र वै ब्रह्मणः क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं समृद्धं तद्वीरवदाहास्मिन् वीरो जायते ॥

ऐ० पञ्चि० ८ । अ० २ । कं० ६, ६ ॥

इसलिये उस परमात्मा को मेरा बारम्बार नमस्कार है कि जिसके अनुग्रह से हम लोग इन राज्यों के अधिकारी होते हैं ॥

सम्राजं साम्राज्यं भोजं भोजपितरं स्वराजं स्वाराज्यं विराजं वैराज्यं राजानं राजपितरं परमेष्ठिनं पारमेष्ठ्यं क्षत्रमजनि क्षत्रियोऽजनि विश्वस्य भूतस्याधिपतिरजनि विशामत्ताजनि पुरां भेत्ताजन्यसुराणां हन्ताजनि ब्रह्मणो गोप्ताजनि धर्मस्य गोप्ताजनीति ॥ स परमेष्ठी प्राजापत्यो-ऽभवत् ॥

ऐत० पं० ८ । अ० ३ । कं० १२, १४ ॥

वही हमारा सम्राट् अर्थात् चक्रवर्त्ती राजा, और वही हम को भी चक्रवर्त्ती राज्य देने वाला है । जो पिता के सदृश सब प्रकार से हमारा पालन करने वाला, स्वराट् अर्थात् स्वयं प्रकाश-स्वरूप और प्रकाशस्वरूप राज्य का देने वाला है । तथा जो विराट् अर्थात् सब का प्रकाशक, विविध राज्य का देने वाला

है। उसी को हम राजा और सब राजाओं का पिता मानते हैं। क्योंकि वही परमेष्ठी सर्वोत्तम राज्य का भी देने वाला है। उसी की कृपा से मैंने राज्य को प्रसिद्ध किया, अर्थात् मैं क्षत्रिय और सब प्राणियों का अधिपति हुआ। तथा प्रजाओं का संग्रह, दुष्टों के नगरों का भेदन, असुर अर्थात् चोर डाकुओं का ताड़न, ब्रह्म अर्थात् वेदविद्या का पालन और धर्म की रक्षा करने वाला हुआ हूं॥

स एतेनैन्द्रेण महाभिषेकेणाभिषिक्तः क्षत्रियः सर्वा जितीर्जयति सर्वान् लोकान् विन्दति सर्वेषां राज्ञां श्रैष्ठ्य-प्रतिष्ठां परमतां गच्छति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यं जित्वास्मिंल्लोके स्वयंभूः स्वराडमृतोऽमुष्मिन्त्स्वर्गे लोके सर्वान् कामाना-प्त्वामृतः सम्भवति यमेतेनैन्द्रेण महाभिषेकेण क्षत्रियं शापयित्वाऽभिषिञ्चति॥

ऐत० पं० ८। अ० ४। कं० १९॥

जो क्षत्रिय इस प्रकार के गुण और सत्य कर्मों से अभिषिक्त अर्थात् युक्त होता है, वह सब युद्धों को जीत लेता है। तथा सब उत्तम सुख और लोकों का अधिकारी बन कर सब राजाओं के बीच में अत्यन्त उत्तमता को प्राप्त होता है। जिससे इस लोक में चक्रवर्त्ती राज्य और लक्ष्मी को भोग के मरणानन्तर परमेश्वर के समीप सब सुखों को भोगता है। क्योंकि ऐन्द्र अर्थात् महा-ऐश्वर्ययुक्त अभिषेक से क्षत्रिय को प्रतिज्ञापूर्वक राज्याधिकार मिलता है। इसलिये जिस देश में इस प्रकार का राज्य प्रबन्ध किया जाता है, वह देश अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है॥

ब्रह्म वै ब्राह्मणः क्षत्रँ राजन्यस्तदस्य ब्रह्मणा च क्षत्रेण चोभयतः श्रीः परिगृहीता भवति। युद्धं वै राजन्यस्य वीर्य्यम् ॥

शा० कां०१३। अ० १। ब्रा० ५। कण्डि० ३, ६ ॥

जो मनुष्य ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर और वेद का जानने वाला है, वही ब्राह्मण होने योग्य है। जो इन्द्रियों का जीतने वाला, पण्डित, शूरतादिगुणयुक्त, श्रेष्ठ, वीरपुरुष क्षत्रधर्म को स्वीकार करता है, सो क्षत्रिय होने के योग्य है। ऐसे ब्राह्मण और क्षत्रियों के साथ न्यायपालक राजा को अनेक प्रकार से लक्ष्मी प्राप्त होती, और उसके खजाने की हानि कभी नहीं होती। यहां इस बात को जानना चाहिये कि जो राजा को युद्ध करना है, वही उसका बल होता है। उसके विना बहुत धन और सुख की प्राप्ति कभी नहीं होती। क्योंकि निघण्टु में संग्राम ही का नाम महाधन है। सो उसको महाधन इसलिये कहते हैं कि उससे बड़े २ उत्तम पदार्थ प्राप्त होते हैं क्योंकि विना संग्राम के अत्यन्त प्रतिष्ठा और धन कभी नहीं प्राप्त होता ॥

राजन्य एव शौर्य्यं महिमानं दधाति, तस्मात्पुरा राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जज्ञे ॥

श० कां० १३। अ० १। ब्रा० ६। कण्डि २ ॥

पूर्वोक्त राजा शूरतारूप कीर्त्ति को धारण करता है, तभी सम्पूर्ण पृथिवी के राज्य करने को समर्थ होता है। इसलिये जिस देश में युद्ध को अत्यन्त चाहने वाला, निर्भय, शस्त्र, अस्त्र चलाने में अति चतुर, और जिसका रथ पृथिवी, समुद्र और अन्तरिक्ष में जाने आने वाला हो, ऐसा राजा होता है, वहां भय और दुःख नहीं होते ॥

इसी प्रकार सभा करके राज्य का प्रबन्ध आर्यों में श्रीमन्महाराज युधिष्ठिरपर्य्यन्त बराबर चला आया है, कि जिसकी साक्षी महाभारत के राजधर्म आदि ग्रन्थ तथा मनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्रों में यथावत् लिखी है। उनमें जो कुछ प्रक्षिप्त किया है उसको छोड़ के बाकी सब अच्छा है, क्योंकि वह वेदों के अनुकूल है। और आर्य्यों की यह एक बात बड़ी उत्तम थी कि जिस सभा वा न्यायाधीश के सामने अन्याय हो, वह प्रजा का दोष नहीं मानते थे, किन्तु वह दोष सभाध्यक्ष, सभासद् और न्यायाधीश का ही गिना जाता था। इसलिये वे लोग सत्य न्याय करने में अत्यन्त पुरुषार्थ करते थे, कि जिससे आर्य्यावर्त्त के न्यायघर में कभी अन्याय नहीं होता था। और जहां होता था वहां उन्हीं न्यायाधीशों को दोष देते थे। यही सब आर्यों का सिद्धान्त है। अर्थात् इन्हीं वेदादि शास्त्रों की रीति से आर्यों ने भूगोल में करोड़ों वर्ष राज्य किया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

--:)o(:--

आर्य संस्थाओं के चित्र

जो आर्यमहानुभाव सार्वदेशिक साप्ताहिक में यज्ञशालाओं, आर्यसमाज मन्दिरों, गुरुकुल, स्कूलों वा आर्य संस्थाओं के चित्र छपवाना चाहें, वे ब्लाक भेजें, छापकर ब्लाक वापिस कर देंगे। फोटू भेजें तो ब्लाक बनने का व्यय सहन करें, छाप कर ब्लाक भी आपको भेज देंगे। —प्रबन्धक

आर्य जन जानते ही हैं कि सत्यार्थप्रकाश से भी पहले

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने

एक छोटी सी, किन्तु बड़ी ही महत्त्वपूर्ण

व्यवहार भानु

पुस्तक लिखी थी। यदि इस पुस्तक का करोड़ों की संख्या में प्रचार हो जाता तो आज राष्ट्र में चरित्रहीनता, भ्रष्टाचार, अनाचार, और दुर्व्यवहार न होता।

किन्तु यह पुस्तक करोड़ों तो दूर—लाखों भी नहीं छपी

चलो–जो हुआ, सो हुआ, अब

सभा इसे प्रथम वार एक लाख छापेगी

एक लाख क्यों ? इसलिये कि तभी तो आठ पैसे में पड़ेगी। वेद कथा अंक के साईज में और इसी कागज पर इसे आठ ही पैसे में अर्थात् आठ रुपये सैकड़ा और ८०) हजार में देंगे।

यदि एक-एक आर्य जन, या आर्यसमाज एक-एक हजार प्रति लेकर कालेज स्कूल के विद्यार्थियों में मुफ्त बंटवा दें तो राष्ट्र का बड़ा कल्याण होगा।

१००० पर, लेने वाले का नाम भी छापेंगे।

एक लाख प्रति के लिए केवल १०० आर्डर चाहिये थे किन्तु आर्ययुवक परिषद् दिल्ली के अध्यक्ष श्री पं० देवव्रत जी धर्मेन्दु ने दस हजार का आर्डर इस शर्त पर दिया कि एक लाख दस हजार छपे। अब आर्य सज्जनो ! आपके उत्तर की प्रतीक्षा है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली-१

The Ten Principles of the Arya Samaj

1—God is the cause of all Knowledge and of all that is known through Knowledge.

2– God is Existent, Intelligent and Blissful. He is Formless. Omnipotent, Just, Merciful, Unborn, Endless, Unchangeable, Beginning-less. Unequalled, the Support of all, the Lord of all, All-Per-vading, All-Controlling, Unchanging, Immortal, Fearless, Eternal and Holy, and the Maker of the Universe. To Him alone worship is due.

3—The Vedas are the scriptures of all true Knowledge. It is the first duty of all Aryas to read them, teach them, recite them and hear them being read

4—One should always be ready to accept Truth and to give up Untruth.

5 – One should do everything according to the dictates of Dharma (righteousness) i. e. with due regard to Right and Wrong.

6—The primary object of this Society is to do good to the whole world, i. e to achieve its physical, spiritual and social progress.

7--One's dealings with all should be regulated by Love and Justice in accordance with the dictates of Dharma (righteousness).

8--One should promote Vidya (knowledge) and dispel Avidya (ignorance).

9– One should not be content with one's own welfare but should look for one's own welfare in the welfare of all.

10--One should regard oneself under restriction in following rules of social welfare. while in following rules of individual welfare all should be free.

विश्व शान्ति

Universal Peace

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

यजुर्वेद ३६। १७

द्युलोक शान्ति दाता हो, अन्तरिक्ष शान्तिदाता हो और पृथिवी पर शान्ति हो। जल शान्तिदाता हो और ओषधियां शान्तिदायक हों। वनस्पतियें शान्तिदाता हों, विद्वज्जन शान्ति लावें, ज्ञान भी शान्तिदाता हो। सभी वस्तुयें शान्तिकर हों और शान्ति भी शान्तिकर हो। सर्वदा हमें शान्ति मिले।

May there be peace in heavenly region, may there be peace in the atmosphere, may peace reign on the earth, may the waters be soothing and may the medicinal herbs be healing; may the plants be source of peace to all, may all the enlightened persons bring peace to us, may the sciences spread peace throughout, may all other objects give us peace and may peace even bring peace to all and may that peace come to us ever.

—Acharya Vaidyanath Shastri

Vedas—the Oldest Scripture of all

By Shri O. P. Tyagi ji

VEDAS, the main religious scripture of the Hindus, are the oldest books in the library of mankind. They are four in number, i. e. Rig Veda, Yajur Veda, Sam Veda and Atharva Veda.

The whole of the other religious literature of the Hindus is only an elaboration or explanation of these Vedas.

Not ideas or Commandments

Vedas are not the ideas or commandments of one man in the name of God; but are the result of researches in the spiritual field through meditation by many learned saints or " Rishis. "

So. like scientific knowledge, the knowledge of Vedas is based on reasoning and logic. There is no place for blind faith and superstition in Vedas.

The knowledge of Vedas is not limited to the ways of worship ; but it deals with all the problems of human beings.

Main Fundamentals

There is not a single problem of man which is not fully answered in Vedas. The knowledge necessary for physical, psychological, mental, spiritual, social development of the human race is found there.

The main fundamentals or laws of modern science are related in the Vedas.

The teachings of Vedas are not for a particular race, place or time. They are beneficial for all, and for all time. There is no place for caste, creed and race in Vedas.

Two Kinds of People

According to Vedas there are only two kinds of people : good or bad. Goodness and badness depends only on the good and bad qualities of a man and not on his beliefs.

Broadly speaking :

Rig Veda deals with knowledge—of God, the soul and matter.
Yajur Veda deals with knowledge of action.
Sam Veda deals with knowledge of worship, and Atharva Veda deals with knowledge of food, medicine, etc.

Dayanand Saraswati and the Upanishads

by Rai Bahadur Ratan Lal, B. A., LL. B. Formerly Common Chief Justice of 14 Malwa States (Madhya Pradesh) High Courts.

The six darshanas on the four Vedas :
Vaisheshic Darshan

The Vedic revelation occupies a unique position of honour, reverence and authority in ancient Indian thought and culture. Its authority is taken to be intrinsic. Take up any standard original work on philosophy that Indian genius and thought has produced during the course of ages and you will find its author known or unknown, bowing to the supreme authority of this revelation. This may be easily illustrated by the six darshanas. To begin with Kanad says in his Vaisheshic Darshan—

तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्।

Vaisheshic 1. 1. 3.

Veda, being the work of God, its authority is established Udayanacharya takes the word 'tat'

in the above sutra to mean God :—

तदवचनादिति । तेनेश्वरेण वचनात् प्रणयनादाम्नायस्य प्रामाण्यमित्यर्थः ॥

Kirnavaliprakash I. 13.

Udayanacharya further says in his Kirnavali page 89—

अविच्छेदे तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यमिति व्याकुप्येत । लोकसन्तत्यविच्छेदे वेदसम्प्रदायस्याप्यविच्छेदता ॥

If there is no beginning of this Universe Kanad's dictum that Veda is authority as it is word of God will fall through. If there be no beginning or end of the Universe then Veda too will have no existence or end. Hence according to Kanad this Universe has a beginning and at that time God gives the knowledge of Veda to the Rishis.

Shankar Misra also interprets the word 'tat' to signify God in his commentary.

तद्वचनादिति । तदित्यनुपक्रान्तमपि प्रसिद्धिसिद्धतयेश्वरं परामृशति, यथा—"तदप्रमाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः (न्याय० २। १-५६) इति गौतमीय सूत्रे तच्छब्देनानुपक्रान्तोऽपि वेदः परामृश्यते । तथा च तद्वचनात् तेनेश्वरेण प्रणयनादाम्नायस्य वेदस्य प्रामाण्यम् ॥

Vaisheshic I.1.3 Upaskar p. 7.

Nyaya Darshan

Gautam lays down in his Nyaya Shastra :—

मन्त्रायुर्वेदप्रमाण्यवच्च तत् प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् ।

Nyaya 2. 1. 67

Apta persons have always accepted the authority of the Vedas and its authority should therefore be admitted. One has to uphold the authority of Ayurveda and the mantras.

The commentator on Nyaya says :—

य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेद-प्रभृतीनाम् ।

Nyaya Bhashya 2.1.67, page 167

The aptas or Rishis were the seers of Veda, not its authors. He further says —

मन्वन्तर-युगान्तरेषु चातीतानागतेषु सम्प्रदायाभ्यास-प्रयोगाविच्छेदोवेदानां नित्यत्वम्, आप्तप्रामाण्याच्च प्रामाण्यं लौकिकेषु शब्देषु चैतत्समानमिति ॥

The Vedas are eternal. p. 168

Sankhya Darshan

Kapil has dealt with the Vedic revelation in the fifth Adhyaya (chapter) of his Sankhya Darshan in the form of questions and answers (see 5.45 to 5.51) and in the last sutra i. e. 5.51 gives his own view :- 5.51

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।

In other words the Vedas having been produced by His own power, carry their authority in themselves.

Vedant Darshan

Badrayana in his Vedant Sutras acknowledges the supremacy of Vedic revelation and takes it to be an authority in itself :— 1.1.3

शास्त्रयोनित्वात् ।

In his Vedant commentary, Shankaracharya interprets it and says :—

महत ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म नहीदृशस्य शास्त्रस्यर्ग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः सम्भवोऽस्ति ॥

Vedant Shankar Bhashya 1.1.3

The cause of the sublimely great Rig and other Vedas which are replete with many arts and sciences (Vidya) and which illumine all things with their light is Brahma. Who else besides the All-Knowing Brahma can produce these Shastras ?

In Vedant Darshan there are other sutras about Veda which give the view of its author Badarayana about the Vedas :—

अतएव च नित्यत्वम् । Vedant 1.3.28

Being the word of eternal God, the Vedas are eternal. Shankaracharya has also interpreted this sutra in the same sense.—

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविंदन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।

(Rig 10-71-3) इति स्थितामेव वाचमनुविन्नां दर्शयति वेदव्यासश्चैवमेव स्मरति--युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा। इति (महाभारत)

The eternal Vedic lore which is instilled in the minds of the Rishis is later on imbibed by other people. Vyas also is of the opinion in the Mahabharata that Vedas are the word of God.

Yoga Darshan

Patanjali gives the following sutras in his Yoga Darshan :—

१—क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः (१-२४)।

२ तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् (१-२५)।

३—स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात (१-२६)।

४—तस्य वाचकः प्रणावः (१-२७)।

५—तज्जपस्तदर्थ-भावनम् (१-२८)

Translated into English these may be interpreted thus :—

1—The Supreme Lord is a Special Spirit, unaffected by Afflictions, Actions, Fruition and Dispositions. I.24.

2—In Him rests the highest stage of the Seed of Omniscience. I.25.

3—He is the greatest Teacher of even the earliest teachers, because unconditioned by time. 1.26

4—Om is His indicator. 1.27.

5—(There should be) repetition of that (Om) and reflection on what is signified by it. 1.28.

In his commentary, Vijnana Bhikshu says. :-

"His powers and omniscience are equalled or excelled by none; He is the Lord or Spiritual Chief and father of all deities Brahma, Vishnu, and Rudra; He is the imparter of spiritual vision to the deities, in his character of the Inner guide and also through the Vedas. Pranava-Om-is his name, Devotion to Him consists in contemplation of Him, beginning with the reciting of the Pranava, and ending in the direct perception of His Effulgence". (Yoga Sarsangrah pp. 27-28 quoted by Dr. Ganga Nath Jha in his Yoga Darshan). In his commentary on the first sutra 1.24 Vyas says :-

Question : "This Eternal Supremacy of God, due to superior Sattva attribute is there any authority or proof for it ? or is it without proof or authority ?"

Answer : Its proof lies in the Scripture.

Question : What is the proof for the validity of this scripture ?

Answer : The proof for it lies in the Sup-

reme Sattva-attribute manifested in the authorship of the Mantras and Ayurveda. The relationship of cause and effect between Scripture and Supremacy both subsisting in the Intelligence of the Lord, is eternal pp.40-41 of Dr. Ganga Nath Jha's English translation of the Yoga Darshan, 2nd Edition.)

It is obvious from a perusal of the five sutras given above that Patanjali took the Vedas to be authoritative and adopted its directions for attainment of Yoga according to his method.

Mimansa Darshan

Says Dr Radhakrishnan on page 392 of Vol. II of his Indian Philosophy, "The views on the apaurusheyatva of the Vedas are practically the same in the Purva Mimansa and the Vedanta. Cp. Bhamati Purusasvatanbyamatram apauruse yatvam rocayante jaiminiya api taccasmakam api Samanam .. ... (1.I.3). The Mimansakar hold that the Vedas exist for ever in their own right. Since there is no author of Vedic texts, there is no possibility of defects and so the non-authoritativeness of the Vedas is inconceivable" (S. V. II see also II, 62-69).

The Vedas are eternal. The Vedas are valid

in themselves (Apaurusheyam Vakyam Vedah) (Arthsangraha p. 3) (see pp. 387 to 392 of Radha Krishnan's Indian Philosophy Vol. II).

Bhagwan Dayanand has in his own inimitable way said the same thing. Says he in his matchless work, 'Introduction to Vedic Commentary' :—

"Sage Kanada, the author of the Vaisheshika aphorism also says : "The Vedas are authoritative because they are His word and because they contain an exposition of Dharma. Vaisheshika 1.1.3. The meaning of the aphorism is that all men should acknowledge the eternal authority of the four Vedas, because they enjoin the performance of Dharma as a duty and are the word of God".

Similarly, the sage Gautama also in his Nyaya–Shastra; 'The authoritativeness of verbal proof is like that of the Veda and the medical science (ayurveda) and it has been declared by the Aptas (trustworthy persons); Nyaya 11.1 67. Its purport is that all men should acknowledge the authoritativeness of the Vedas which are eternal and are the word of God, because all the great Yogis, Brahma, &c., who were righteous, free from defect, treachery and other

similar defects, merciful, preachers of truth, and masters of learning have admitted the authoritativeness of the Vedas to be of the same nature as that of the Mantra and the Ayurveda. Just as one considers a mantra, which reveals a scientific principle to be true authoritative when its truth is experimentally established, and, just as one, on observing that the use of medicines prescribed in one portion of the Ayurveda cures disease, comes to have a faith in the medicines prescribed in the other portions of the same, so, on being satisfied, by direct cognition of the truth of a proposition mentioned in one portion of the Vedas, one ought to believe in the truth of the contents of their remaining portions which deal with subjects that are incapable of direct proof. Sage Vatsyayana also delivers himself to the same effect in his commentary on this aphorism. Says he, 'This inference is drawn from the fact that the seers and the expositors were one and the same. The same trustworthy persons who were the expositors of the Vedas were also the expositors of the Medical Science. From this fact we infer that the Vedas are as much authoritative as the medical science. Hence the argument, that the words of the Vedas are of eternal

authority, because they have been acknowledged to be such by trust-worthy persons. Its purport is that as the word of a trust-worthy person is authoritative so the Vedas also should be admitted to possess authority because they also are the word of the perfectly trustworthy God and their authoritativeness has been acknowledged by all trust-worthy persons. Consequently the Vedas, being God's knowledge, their eternalness follows as a matter of course.

Sage Patanjali also observes as follows on this subject : "He is the teacher of the ancients also, because He is not limited by time". Yoga 1.1.26. God is the teacher of all of the ancients such as Agni, Vayu, Aditya, Angiras, Brahma, &c. who were born in the beginning of creation, of the moderns such as ourselves and of those also, who are to be born in future. God is called the teacher because He imparts knowledge of true substances by means of the Vedas. He is eternal because He is not affected by the action of time. The afflictions born of ignorance, &c , sinful acts or their impressions touch Him not. In Him there is highest knowledge and wisdom, innate and eternal. The Vedas are His word. They are, therefore, necessarily eternal and

full of truth.

The remarks of Acharya Kapila also, on this subject, which occur in the 5th Chapter of his Sankhya Shastra, are to the same effect. Says he ; '(The Vedas)' having been produced by His own power, carry their authority within themselves. Sankhya V.51. The meaning of this is that as the Vedas have been brought to light by the chief inherent power of God, one must need acknowledge their self authoritative and eternal character.

Sage Krishnadwaipayana Vyasa also makes the following observations on this subject in his Vedanta-Shastra : He is the source of the Shastra (Veda.' Vedanta 1.1.3. It means that Brahma is the source and cause of the Rig and the other Vedas which are the seat and repository of numerous sciences, illumine all subjects like a lamp and deal with all knowable things. It is impossible that the author of such Shastras as the Rigveda and others which are encyclopaedias of universal knowledge should be any but an omniscient being. It is evident that he who expounds a subject knows more than what he writes as Panini did in the domain of the science of grammar. Shankaracharya, in his commentary on this aphorism says that a

person, who writes on a subject knows more than what he writes upon it, is so well known in the world that it is not necessary to labour the point further'. This goes to show that the Shastra of the Omniscient God must needs be eternal and must contain a knowledge of all things. In the same chapter of the Vedanta Shastra occurs another aphorism, viz., and, for this very reason (is established) the eternalness (of the Vedas), Vedanta 1.3 29. All men should, therefore, believe the Vedas to be self-authoritative and repositories of all sciences and eternal. They are self-authoritative and repositories of all sciences because they are the word of God, and possess the quality of eternalness. They are eternal because they remain unchanged through all ages. No other proof is admissible to prove the authoritativeness of the Vedas Other proofs serve only as auxiliary or corroborative evidence. The Vedas, like the sun, carry their own authority with them. As the sun illumines all objects, both great and small, mountains as well as the motes, with his own light, so the Vedas shining with their own light shed their light on all sciences."

(Pages 42 to 47 of Ghasi Ram's translation)

It is thus well established beyond the shadow of any doubt that, without a single exception, all the six darshanas owe allegiance to Veda. They do not at all claim to be in any way part of the four Vedic Samhitas and they do not admit that any work which preceded them will follow them can possibly be the word of God or can be self authoritative and eternal. A. C. Bose in his masterly work 'The Call of the Vedas' rightly says on page 6 of his book :—

"Except for certain non-conformist cults, all religious denominations in the different ages in India have recognised the Vedas as the supreme authority. The same attention has not been paid to the Upanishads or the Epics or the works of Sanskrit classical writers."

Thus the four Vedas are distinct from the rest of the literature of India and for the matter of that from the literature of the world.

It is thus obvious that the six Indian systems of philosophy are unanimous on the point that the Vedas are eternal and of supreme intrinsic authority and their authority can not be questioned in any form or shape. Not only that but Dayanand presented a synthetic view of all these Indian Darshans and he was empha-

tically of the view that they do not contradict each other which view he expressed in his work 'Satyarth Prakash' seventy three years ago in 1884. It appears that as all the six schools of philosophy adopt Veda as their sheet anchor, there is that unity in them of which Dayanand spoke. Says he :-

"Just as knowledge is one but its various branches are different from one another, similarly the six different constituents of the knowledge of creation are differently described in those six works. They are not at all inconsistent. For example, the construction of an earthen pot requires action, time, clay, thought, energy to divide and mix the properties of the cosmic substance (prakriti) and the potter. In the same manner the action leading to the construction of the cosmos is discussed in the Mimansa,Time has been treated in Vaisheshika, material cause in Nyaya, energy in Yoga; the serial enumeration of elements in Samkhya and of the efficient cause of creation, the Supreme God in the Vedant. Thus there is no inconsistency. To take an example from medical books, they deal with diagnoses, treatment, medicines and dietry differently under various

heads, but the main object of all is the cure of the disease. Similarly the six causes of the creation of cosmos have been severally treated by each philosopher in these six books of philosophy. There is no conflict in that."

(Chapter III of Satyarth Prakash).

Dayanand again says in chapter VIII of Satyarth Prakash :—

"Inconsistency or antithesis or contradiction or opposition sets in when in discussing a subject diverse views are expressed on the same point. Now mark how the descriptions of creation in the six works on Indian philosophy are consistent. Mimansa lays down that no effect can come into being in this world without adequate preceding action". According to Vaisheshik, no effect can come into being without spending time over it". Nyaya lays down that 'No effect can come into being without its material cause.'

"Yoga points out that "No effect can come into vogue without requisite learning, knowledge and thought."

"Sankhya explains that no effect can come into existence without the composition of elements".

Vedant holds that 'nothing can be made if the maker does not make it.'

'Every cosmos is therefore created from six different causes. And each of the six works on Indian philosophy deals with one of these six causes. There is no contradiction or inconsistency in their descriptions of creation The six writers of these shastras have cooperated with each other in the matter of the exposition of the creation of the cosmos."

European Oriental scholars and their satellites in India ridiculed this view. But as Truth is the daughter of time and not of Authority both European and Indian Oriental scholars are now gradually coming to his view. Theos Bernard in his 'Philosophical Foundations of India' expresses himself in favour of this synthetic view. Says he on page 7 (preface) "To understand correctly Hindu philosophy, it is paramount that one realize that the basis of all schools is the same. Together they form a graduated interpretation of the Ultimate Reality. Each school is based on the same metaphysical doctrine, while discussing some particular aspect of the whole. For example : Nyaya discusses the means by which

knowledge may be had of the ultimate Reality, Vaisheshik, the things to be known about that Ultimate Reality, Sankhya, the evolution of metaphysical doctrine, Yoga the metaphysical doctrine in relation to the individual, the Mimansa, the rules and methods of interpreting the doctrine, Vedanta, the relationship between God, Matter and the world, and Kashmir Shaivism, the nature of the Ultimate Spirit and the cause of the Initial Impulse. This outline is intended merely to show the inter-relation-

ship of these schools and how each assumes the doctrines of the other while it solves its special problem." And again on page 12 he writes: 'The six Darsanas constitute the classical philosophical systems of India ····· They are not the creation of any one mind nor the discovery of any single individual Together they form a graduated interpretation of the Ultimate Reality, so inter related that the hypothesis and method of each is dependent upon the other. In no way are they contradictory or antogonistic to one another, for they all lead to the same practical end; knowledge of the Absolute and Liberation of the Soul. They have many characteristics in common.··· They all grew out of the Upanishads,·········· they are delivered in the Sutra style, that is as aphorisms; as such, they are extremely concise, avoiding all unnecessary repetition and employing a rigid economy of words, making it difficult to understand them correctly in their original form without the use of commentaries for they use many of the same terms, but each system gives its own meaning to the common concepts; all accept the eternal cycle of Nature which is without beginning

and end, and which consists of vast periods of creation, maintenance and dissolution; all accept the principle of regeneration of the Soul that maintains that life and death are but two phases of a single cycle to which the soul is bound and to which it clings because of ignorance of the true nature of things; all accept Dharma as the moral law of the Universe that

---

accounts for these eternal cycles of Nature, as well as the destiny of the human soul, all agree that knowledge is the path of freedom and that Yoga is the method to attain final liberation."

Dr. Radha Krishnan in his Introduction to Vol. II of his Indian Philosophy says, "The six systems agree in certain essentials. The acceptance of the Veda implies that all the systems have drawn from a common reservoir of thought...........the spiritual experiences recorded in the Vedas are subjected to a logical criticism...........Intution, inference and the Veda are accepted by the systems (vide pp. 24 and 25)..............Logic and science, philosophy and religion are related organically... The Nyaya points out that no stable philosophy can be built except on the foundations of logic. The Vaisheshik warns thus that all fruitful philosophy must take into account the constitution of physical nature. We can not build in the clouds...But to extend to the Universe at large what is true of the physical world would be to commit the fallacy of scientific metaphysics, and the Sankhya asks us to beware of that danger. The resources of nature can not

generate consciousness Reality appears not only in science and in human life, but in religious experience, which is the subject matter of the Yoga system. The Purva Mimansa and the Vedanta lay stress on ethics and religion. The relation between nature and mind on the supreme problem of philosophy which the Vedanta takes up. The saying that the saints do not contradict one another, is true of philosophies also. The Nyaya-Vaisheshik realism, the Sankhya Yoga dualism and the Vedanta monism do not differ as true and false but as more or less true" (vide pp. 760-770)

Max Muller has expressed the same feeling on perusal of the six Darshans. Says he "The longer I haye studied the various systems, the more have I become impressed with the truth of the view taken by Vigyanbhikshu and others that there is behind the variety of the six systems a common fund of what may be called national or popular philosophy."

(Max Muller S. S. p. XVII).

The interesting view of Louis Renou the French Scholar in the 'Destiny of the Veda in India 1965' on the subject may be briefly quoted:

"The Samkhy accounts evidence (agama) among the three instruments of knowledge; it is not a question of just any kind of evidence but of an "obtained enunciation" (understood by intrinsic appropriation, Vijnanabhiksu; or by revealed teaching, Aniruddha), aptopadesah sabdah, Samkhyapravacana, 1, 101 : therefore, spontaneously valid, self-evident, free of doubt, contradiction and irrationality (the opposite of Buddhist evidence, which is not upheld by any authority). These characteristics apply, par excellence, to the Veda, the collection of revealed texts embodying supra-sensory truths.

कल्याण का मार्ग बताने वाला वेद है

आचार्य श्री स्वामी गंगागिरि जी महाराज
गुरुकुल राय कोट, लुधियाना

परमात्मा ने संसार को रचा है, जिसमें असंख्य योनियों में से उच्च योनि मनुष्य है। मनुष्य के उद्धार के लिए भगवान ने वेद के ज्ञान को ही सृष्टि का आरम्भ में दिया है, मानव के कल्याण के लिए। वेद में कोई कथा या कहानी नहीं है। न ही कोई इतिहास है। वेद में मनुष्य के जीवन व्यतीत करने के लिए शिक्षा दी हैं—व्यवहारादि की। जिससे पता चलता है कि संसार में प्राणीमात्र एक दूसरे से किस प्रकार व्यवहार करें।

मैतं पन्थामनुगा भीम एष येन पूर्वं नेयथ तं ब्रवीमि।
तम एतत्पुरुष मा प्रपत्था भयं परस्तादभयं ते अर्वाक्॥
अ० ८। १। १०॥

इस मन्त्र का भाव यह है— एतम् पन्थाम्-इस मार्ग पर मा अनुगा-मत चल, एष भीमा: क्योंकि यह भीम है। येन-जिस (मार्ग) से पूर्वम्-पहले, नेयथ-ले जाया गया है, तं ब्रवीमि- उसे बताता हूं, हे पुरुष नागरिक, एतम् तमः इस अन्धकार को प्राप्त पन्था-मत प्राप्त हो। अथवा इस अन्धकार में मत पड़। परस्तात् भयं-पिछली ओर भय है। अर्वाक्-इस ओर (अभयम्) तुझे अभय है।

जीवन का मार्ग बहुत बीहड़ तथा भय वाला है। इस में बड़े २ समझदार व्यक्ति भी भटक जाते हैं। मार्ग भ्रष्ट हो जाते हैं। साधारण जनों का तो कहना ही क्या ? क: पन्था ? मार्ग कौनसा है यह सनातन प्रश्न है। सब कालों में और सब देशों में यह प्रश्न विचार के लिए सामने आया है। परन्तु बहुत कम भाग्यवान् हैं जो इस प्रश्न का समाधान कर सके हैं। अर्थात् जीवन यात्रा को कर सके हैं। मैतं पन्था मनुगा—इस राह पर मत चल, सभी मनुष्यों का यह अनुभव है। कर्तव्य पालन के समय सांसारिक मोह घेर लेता

है। न्यायाधीश का पुत्र अपराधी होकर सामने आया है, अपराध प्रमाणित हो चुका है। किन्तु वह पुत्र मोह में पड़ जाता है तथा न्याय नहीं कर पाता क्या यह ठीक है ? नीतिकार का मत है :—

गुरूर्यदिष्टेन रियौ सुतेऽपि वा निहन्ति दण्डेन स धर्मविप्लवम् ।

कानून भंग करने वाला और धर्मोलघन करने वाला चाहे पुत्र हो या शत्रु, न्यायानुसार अवश्य दण्ड देना चाहिए। न्यायाधीश पुत्र मोह में पड़ कर न्याय से फिसल जाता है। वह मार्ग छोड़ देता है तथा वह उस मार्ग पर चलता है जिस मार्ग को वेद कहता है मैतं पन्थामनुगाः—इस राह पर मत चल। मनुष्य जीवन का लक्ष क्या है ? खाना पीना तथा भोग करना। बहुत पुराने काल में रावण ने सीता भगवती को कहा था :—

भुङ्क्ष्व भोगान् यथा कामं पिब भीरू रमस्व च ।

अर्थात् भोग को भोग, खा पी तथा मौज कर। विहार कर भोगों को भोग। किन्तु माता सीता ने वेद में पढ़ रखा था-मैतं पन्था मनुगाः। सीता इस मार्ग पर नहीं चली। राक्षस रावण के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। भोग भोगना मनुष्य का धर्म नहीं है। क्या मनुष्य भोग से खान पान आदि विषयों में पशुओं की समता कर सकता है। भोग भोगना राक्षसों का धर्म है। स्वयं रावण ने कहा है :—

स्व धर्मो रक्षसां भीरू सर्वथैव न संशयः। गमनं वा पर स्त्रीणां हरणं संप्रमथ्य वा । (वा०-रा०-सु०)

हे धर्म भीरू सीते ! पर स्त्री गमन (व्यभिचार) भोग दारा हरण यह तो राक्षसों का धर्म हैं। तो क्या हम राक्षस वनें? वेद कहता है न भाई-भीमा एवं यह मार्ग भयंकर है। आज कल भी जो लोग कहते हैं कि खाओ पीओ तथा मौज करो वे (लोग) रावण के समर्थक हैं। राक्षस धर्म का प्रचार करते हैं। जब जीवन यात्रा के लिए मनुष्य तैयार होता है तब उस के सामने दुराहा

आता है। एक मार्ग पर सब सुहावनी सामग्री, नाच गाने, स्त्री, खान पाना दि होता है, दूसरे मार्ग पर ऐसा कुछ नहीं दिखाई देता। साधारण मनुष्य अपरिपक्व विवेक वाला मनुष्य पहले भोग मार्ग को चुनता है। कारण दो हैं—मन्दमति और सांसारिक लालसाओं की पूर्ति की सम्भावना। यम ने नचिकेता को इस दुराहे की बात भलीभांति समझाई है। उसने कहा था :—

"श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः ॥"

कठो० १-२-२।

श्रेयश्च प्रेयश्च दोनों ही मनुष्य को मिलते हैं। किन्तु प्रेयोमन्दो योग-क्षेमाद् वृणीते। कठो० १-२-२। मन्द मति मूर्ख योग-क्षेम के कारण सांसारिक भोग भावना के कारण प्रेय मार्ग को पसन्द करता है। मूर्ख दोनों में भेद नहीं जानता। वह उनमें पहचान नहीं कर पाता। पहचान तो धैर्यवान् विचारशील मनुष्य ही कर पाता है।

'तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः।'

धीर मनुष्य ही उन दोनों श्रेय और प्रेय मार्गों की जांच करके भेद कर सकता। महान अज्ञानी मूढ़ ही इस प्रेय मार्ग पर चलते हैं। यम कहता है :—

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥

कठो०-१-२-५ ।।

जो अविद्या में फंसे हैं तथा स्वयं को पण्डित मान रहे हैं और स्वयं को ही ध्यानी और ज्ञानी मान रहे हैं। ऐसे दुरावस्था ग्रस्त महामूढ़ लोग ही इस मार्ग पर चलते हैं। वे स्वयं अन्धे हैं तथा अन्धों के पीछे चलते हैं।

वेद कहता है—इस मार्ग पर मत चल तुझे मार्ग बताता हूं। पहले भी इस मार्ग पर तुझे और तेरे पूर्वजों को चलाया है। येन पूर्वं ने यथ तं ब्रवीमि।

पर यह मार्ग अन्धकार से ढका हुआ है। इस में मत गिर-अन्धकार मृत्यु है प्रकाश जीवन है। भगवान् ने वेद में कहा है-तम् एतत् पुरुष मा प्रपन्था:। नगर के रहने वालो यह अन्धकार है इसमें मत गिर, नगरवासी तो प्रकाश का अभ्यासी है। पुरुष की यह नगरी शरीर है। ज्योति से आवृत है। प्रकाश से ओत प्रोत का अन्धकार में गिरना लज्जास्पद है। यदि संसार-पथ-प्रेयो-मार्ग-भोग पद्धति इतनी भयावह है तो इसे प्रतीत क्यों नहीं होता है। इस प्रश्न का उत्तर भी यम ने इस प्रकार किया है :—

न साम्परायः प्रति भाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी, पुनः पुनर्वश मापद्यते मे ॥

कठो०-१-२-६ ॥

यह सम्पराय-आनी जानी दुनियां विनश्वर संसार बालक को, मूढ़ अज्ञानी को नहीं दीखता प्रमादी को भी नहीं सूझता। भर्तृहरि के शब्दों में लिखा है —उसने तो शराब पी रखी है। पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरां मुन्मतभूतं जगत्। प्रमाद और मोह की मदिरा पी कर संसार पागल हो रहा है। धन के मद में इस को नहीं देख सकता।

धन का नशा शराब के नशे से भी कहीं तीव्र होता है। इन तीनों की दृष्टि इस संसार से परे नहीं जाती। वे इस लोक एवं अपने शरीर को ही सब कुछ समझते हैं, अतः जन्म मरण के चक्कर में फंसे रहते हैं। वेद कहता है—भयं परस्तात् अर्थात् भय तो पीछे है इस पर मत चल। अभयं ते अर्वाक् अर्थात् इस ओर अभय है-आ इधर चल। तभी आपका कल्याण होगा।

॥ इति शम् ॥

* ओ३म् *

SELECTED TEXTS FROM THE VEDAS

With

ENGLISH TRANSLATION

By

PANDIT AYODHYA PRASAD B. A.

ओ३म्

राष्ट्रीय-प्रार्थना

ओ३म्

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी
जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर
इषव्योऽति व्याधी महारथो जायताम्।
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः
सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः
सभेयो युवास्य यजमानस्य
वीरो जायताम्॥
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां
योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

यजु० २२-२२

OM

National Prayer

O Brahma ! (Supreme Being) let there be born in the Empire Brahmana (man devoted to the attainment of spiritual knowledge) full of spiritual splendour; let there be born Rajanya---man skilled in military enterprise, heroic in spirit, master of the science of military weapons and mighty warrior who can totally vanquish the enemy; let there be born cow giving abundant milk, ox, carrier of heavy loads and horses of high speed; women skilled in various industries, and may the son of this devotee be expert in social works while he attains his youth may he be heroic, all conquering and possessor of war-chariot. May the cloud rain on the required occasions, may the fruit-bearing trees bear ripe fruits in abundance and may the power of acquisition and preservation of property ever remain in us.

YAJ. XXII. 22.

प्रार्थना

ओ३म्

विश्वानि देव सवित-
र्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रन्तन्न आसुव॥

यजु० ३०-३

यः पावमानीरध्येत्यृ-
षिभिः सम्भृतः रसम्।
सर्वं स पूतमश्नाति
स्वदितं मातरिश्विना॥

ऋ० ६-६७-३१

यो भूतं च भव्यं च
सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं
तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

अथ० १०-८-१

INVOCATION

OM

O Savitar ! (All-Creating God) please keep far from us all evils (from thought, word and deed) and let us attain whatever be beneficial to us. YAJ.XXX 3.

HE who imbibes through studies the purifying essence (of Vedic hymns) revealed to the seers, enjoys completely all purified objects made sweet by God, the Life-breath of the universe.

R. V. IX 67. 31.

MY homage be to that Mighty Supreme Being Who is the Ordainer of all that existed in the past and of that which will exist in future and whose essence is bliss alone.

ATH. X. 8. 1.

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋ० १०-१२१-१

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋ० १०-१२१-२

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा
येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋ० १०-१२१-५

GOD Who possesses all the luminous worlds within Himself and exists from the very eternity, is the only One Manifest Lord of all the created objects. He is supporting this earth and the heaven: to that All-blissful Divinity we offer our humble worship.

R. V. X. 121. 1.

HE Who is the Giver of physical vigour and spiritual force, He Whose order is carried out by all the luminous objects and by the enlightened persons, Whose shadow (of grace) is immortality and Whose (disfavour) is death: to that All–blissful Divinity we offer our humble worship. R. V. X. 121. 2.

HE by Whom the heavenly region has been made firm and the earth has been made stead-fast, by Whom the luminous space is supported and by Whom the state of salvation is attained; Who has measured all the worlds in the vast atmosphere: to that All–blissful Divinity we offer our humble worship.

R. V. X. 121. 5.

ईश्वर

ओ३म्

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो
विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रै-
र्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥

ऋ० १०-८१-३

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता
धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्
तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ यजु० ३२-१०

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

यजु० ३१-१८

GOD

OM

HE Whose eyes are everywhere, Whose mouth is in all sides, Whose arms are all around and He Whose feet are in all directions is the only One Divine Being Who has created the heaven and the earth and by means of His all-spreading arms He infuses life into all beings.

R. V. X. 81. 3.

HE is our Brother, our Begetter and He is the Ordainer of the entire universe. He knows all the world and all the objects contained therein. It is in Him where the enlightened persons obtaining salvation move freely in the third stage of their Divine life.

YAJ. XXXII. 10

I know this Supreme Absolute Being Who is full of splendour like the sun and far beyond the darkness (of ignorance). By knowing Him alone one can leave death behind him : There is no other path for the attainment of salvation. YAJ. XXXI. 18.

स पर्यगाच्छुक्रमकायम-
व्रणमस्नाविरँ् शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्य-
तोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः
समाभ्यः॥ यजु० ४०-८

तदेवाग्निस्तदादित्यस्-
तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म
ता आपः स प्रजापतिः॥

यजु० ३२-१

न तस्य प्रतिमा अस्ति
यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मामा
हिँ्सीदित्येषा यस्मान्नजात इत्येषः॥

यजु० ३२-३

HE is All-pervading, Radiant and Incorporeal, free from physical wound, as He is without sinews, Most Holy, Unpierced by any sin. Far-sighted, the Knower of minds of all; All–conquering and Self-existent. He has properly distributed the objects (of the world) to His eternal subjects (i. e. the immortal souls).
YAJ. XL. 8.

VERILY He is Agni (the All-knowing), He is Aditya (Imperishable). He is Vayu (The Mover of all the universe) and verily He is Chandrama (All-blissful Being): Verily He is Shukra (The Holy One), He is Brahma (The Supreme Being). He is Apah (All-pervading) and He is Prajapati the Lord of all creatures).
YAJ. XXXII. I.

THERE is no physical representation of Him, (the contemplation of) Whose name is highly glorifying. This One is Hiranyagarbha (i. e. Who holds within Himself all the luminous worlds like the sun etc.); "May He not harm me" prayer like this is offered to Him and "Because He is not born" statement like this is made about him. YAJ.XXXII 3.

तदेजति तन्नैजति
तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य
तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

यजु० ४०-५

विष्णोः कर्माणि पश्यत
यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥

ऋ० १-२२-१९

य इमे उभे अहनी
पुर एत्य प्रयुच्छन्।
स्वाधीदेवैः सविता॥

ऋ० ५-८२-८

IN the sight of the ignorant He seems to be moving whereas the enlightened one knows that He does not move; for the ignorant He is very far but for the enlightened one He is near at hand. He is within all this universe and He is even outside all this universe.

YAJ. XL. 5.

OBSERVE the working of Vishnu (the All-pervading God) by Whom the holy observances of religion are made known, Who is the Befitting Friend of the possessor of the organs (i. e. the soul). R. V. 1. 22. 19.

HE who without sluggishness precedes both the day and night is the thoughtful Savitar (All-Creating God.) R. V. V. 82. 8.

स्तुति

ओ३म्

त्वं हि नः पिता वसो
त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे॥

ऋ० ८-९८-११

आ हि ष्मा सूनवे
पितापिर्यजत्यापये।
सखा सख्ये वरेण्यः॥

ऋ० १-२६-३

अभि त्वा देव सवित-
रीशानं वार्य्याणाम्।
सदावन्भागमीमहे॥

ऋ० १-२४-३

Eulogium

OM

O God ! Who providest all the creatures with proper habitation, Thou art our Father, and, O God of infinite activities, Thou art our Mother too. Therefore we ever commune with Thee. R.V. VIII. 98.11.

O God, worthy of our choice ! Thou givest boon to the worshippers just as a father to his son, a kinsman to a kinsman and an esteemed friend to an esteemed friend.

R. V. 1. 26. 3.

O Bounteous God ! All-creating and Ever-protecting, we shall solicit Thee for Thou art Lord of all desirable objects and ever to be obeyed. R. V. 1. 24. 3.

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ॥
बलमसि बलं मयि धेहि ।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि ॥
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि ।
सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ यजु० १९-९

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥

यजु० ४०-१६

यतो यतः समीहसे ततो
नो अभयं कुरु ।
शं नः कुरु प्रजाभ्यो-
ऽभयं नः पशुभ्यः ॥ यजु० ३६-२२

O Lord ! Thou art Splendour, implant splendour in me ; Thou art Valour, implant valour in me; Thou art Power, implant power in me; Thou art Vitality, implant vitality in me; Thou art Vehemence, implant vehemence in me ; Thou art Enduracę, implant endurance in me.

YAJ. XIX. 9.

O Divine Agni ! (Self-refulgent God) please lead us on the path of virtue for the acquirement of (physical and spiritual) wealth as Thou knowest all the proçedure of works and wisdom underlying therein. Please remove the sinful acts from us which make us stray so that we may remain ever engaged in uttering Thy praise in various ways.

YAJ. LX. 16.

O God ! make us free from fear averywhere wherever Thou makest Thyself active (in Thy work of creation) ! Let happiness come to us from all Thy subjects and let us remain fearless from the animals.

YAJ. XXXVI. 22.

सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात्
सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात्।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं
सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥

ऋ० १०-३६-१४

यां मेधां देवगणाः
पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने
मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥

यजु० ३२-१४

मेधां मे वरुणो ददातु
मेधामग्निः प्रजापतिः।
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च
मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥

यजु० ३२-१५

SAVITAR (All creating God) pervades westward and Savitar pervades east-ward, Savitar (All creating God) pervades upward and Savitar (All creating God) pervadas downward. May Savitar (All creating God) grant us health and comfort May Savitar (All creating God) give us long life. R. V. X 36 14.

That wisdom which the enlightened persons and the fathers (of knowledge) approach, which that very wisdom O Agni (Self-refulgent God) make me wise to-day, All hail.

YAJ. XXXII. 14.

MAY Varuna (the Supreme Being) grant me wisdom, and may Agni (the Self-refulgent God) and Prajapati (the Lord of entire Creatures) give me quickness of intellect. May Indra (the Omnipotent Being) and Vayu the Source of all strength) confer on me the power of right discretion and may Dhata (God, the Support of the universe) bestow on me the faculty of readiness of apprehension

YAJ. XXXII. 15

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि
तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥

यजु० १-५

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे
प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं
प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥

ऋ० ७-४१-१

प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम
वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुर-
श्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥

ऋ० ७-४१-२

O Agni ! (Self-refulgent God) the Lord of the holy ordinances. I will observe the vow (of truthfulness in thoughts, words and in deeds) may I be able to observe that (therefore O Lord !) give me sufficient strength so that I may attain success in that vow of mine; Through Thy grace I attain the truthfulness by separating myself from untruthfulness.

YAJ. 1. 5.

At dawn we invoke Agni—Self-refulgent God, at dawn we invoke Indra—God of supreme power, at dawn we invoke Mitra—God the Friend of all, Varuna—God the only Object of our choice and at dawn we invoke Ashwina the Creator of the Sun and the Moon. At dawn we invoke Bhaga—God the only Being to be served. at dawn we invoke Pushan—God the Nourisher of the universe and Brahmanaspati, God the Lord of mighty object, at dawn we invoke Soma—all impelling God and at dawn we invoke Rudra—God the Chastiser of evil-doers. R. V. VII. 41. 1.

At dawn we invoke the Victorious Mighty Bhaga-God the only Object of adoration, the Creator of the sun which is situated in the atmosphere and the Upholder of the universe and Sustainer of all, the Knower of all beings, the Imperial Ruler the Chastiser of evil-doers. He admonishes us to worship Him so we invoke Him alone. R. V. VII. 41. 2.

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो
भगेमां धियमुदवा ददन्नः।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वै-
र्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम॥

ऋ० ७-४१-३

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत
प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य
वयं देवानां सुमतौ स्याम॥

ऋ० ७-४१-४

भगएव भगवाँ अस्तु देवास्-
तेन वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति
स नो भग पुरएता भवेह॥

ऋ० ७-४१-५

O Bhaga ! (God the only Object of adoration) Thou art the Leader of all beings and O Bhaga ! (God the only Object of adoration) Thou art Lord of all eternal substances please confer on us this supreme wisdom and shield us from danger. O Bhaga ! (God the only Object of adoration) please augment our earthly possession by bestowing on us kine and horses and O Bhaga ! (Gad the only object of adoration) let us become rich in men and heroes.

R. V VII. 41. 3.

O Generous One ! through Thy grace let us become prosperous at present, at the approach of day and at noon time and let us attain felicity at the rising of the sun and at evening too, so that we may enjoy the loving-kindness of the enlightened persons. R. V. VII 41. 4.

O Bhaga ! (God the only Object of adoration) please be our only Object of service so that we, the enlightened persons may attain felicity through Thy grace for this purpose O Bhaga ! (God the only Object of adoration) all men invoke Thee as such be Thou our Leader here. R. V. VII. 41. 5.

अर्चना तथा उपासना

ओ३म्

अग्निना रयिमश्नवत्
पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम् ॥

ऋ० १-१-३

त्र्यम्बकं यजामहे
सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्-
मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।
त्र्यम्बकं यजामहे
सुगन्धिं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो
मुक्षीय मामुतः ॥

यजु० ३-६०

Worship & Communion

OM

THROUGH the grace of Agni (Self-refulgent God) let one attain such wealth day by day which is verily all nourishing, fame-producing and worthy of the most heroic-minded.

R. V. I. 1. 3.

WE worship God, Whose knowledge remains permanent in past, present and future, Who is full of spiritual fragrance and the Augmenter of our prosperity : May I get rid of the fetter of death just as a ripe cucumber is separated from its stem and may we not be reft of immortality.

We worship God, Whose knowledge remains permanent in past, present and future, Who is full of spiritual fragrance and Giver of the knowledge of His Lordship (to us) so that we may get rid of the fetter of this gross material world just as a ripe cucumber is separated from its stem and may we not be reft of thence (i. e. of immortality).

YAJ. III. 60.

अन्धन्तमः प्रविशन्ति
येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते
तमो य उ सम्भूत्याँ रताः॥

यजु० ४०-६

तद्विष्णोः परमं पदं
सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥

ऋ० १-२२-२०

यस्तु सर्वाणि भूतान्या-
त्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो
न वि चिकित्सति॥

यजु० ४०-६

THEY who worship the simple material elements plunge into blind darkness; and they who take delight in compound material objects sink yet deeper to blinding gloom.

YAJ. XL. 9.

WISE men always behold that lofty (knowable) station of Vishnu (All-pervading God) as if it were extended in the light of the Sun (etc.) like an eye. R. V. 1. 22. 20.

He who sees all beings existing in the Supreme Spirit, and the Supreme Spirit pervading all beings, does not remain in (the stage of spiritual) suspense.

YAJ. XL. 6.

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्या-
त्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः
शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

यजु० ४०-७

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

यजु० ३६-३

नि त्वा नक्ष्य विश्पते
द्युमन्तं धीमहे वयम्।
सुवीरमग्न आहुत॥

साम० १-१-२६

For him who knows that all the living Creatures dwelling in Him are (sentient of pleasure and pain) like his own self what grief and sorrow then remain, for he sees the One alone. YAJ. 40. 7.

BY the Grace of Om–God, Self–existent, Ominiscient and All–bliss, Source of life, the Dispeller of all sufferings and All-pervading we meditate on the most excellent glory of the All–creating Divinity so that He may lead our intellects to noble works. YAJ. XXXVI.3.

O Agni ! (Self-refulgent God) the Object of our invoeation, we commune with Thee, Who art our Object of realisation, Lord of all creatures, All–resplendent and Super–eminently Heroic. SAM. 1. 1. 26.

तीन नित्य पदार्थ

ईश्वर, जीव तथा प्रकृति

ओ३म्

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्न्यो अभि चाकशीति॥

ऋ० १-१६४-२०

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्यो-
रात्मानं धीरमजरं युवानम्॥

अथर्व० १०-८-४४

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या॥
तस्यां हिरण्ययः कोशः
स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ अथर्व० १०-२-३१

Three Eternal Substances

GOD, SOUL & PRAKRITI

(*Matter in Subtle State*)

OM

(LIKE) two birds there are two spirits viz. the finite and the Supreme) which, knit with the bonds of friendship, reside on the same tree (of the material universe). One of the twain (i. e. the finite spirit) enjoys the sweet ripe fruit (of it produced by his actions) whereas the other (i. e. the Supreme spirit simply) looks all around without enjoying its fruitage. R. V. I. 164 20.

THAT individual soul is desireless, firm, immortal, self-existent, contented with the essence of Divinity) and lacking nothing (for its perfection). The man who knows the individual soul to be firm, undecaying and ever young does not fear death. ATH. X 8. 44.

THERE is an impregnable fort of the luminous faculties which is surrounded by eight circles and which has nine portals. Therein is laid a golden treasure-chest which is full of bliss begirt with light. ATH. X. 2. 31.

पुनर्जन्म

ओ३म्

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतो-
ऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता-
न्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥

ऋ० १-१६४-३८

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि
त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि
त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥

अथर्व० १०-८-२७

गर्भो अस्योषधीनां
गर्भो वनस्पतीनाम्।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने
गर्भो अपामसि ॥

यजु० १२-३७

Transmigration

OM

THE immortal (soul) occupying the locality with the mortal (body) attains right and wrong modes of existence being grasped by the subsistence (of his life which is the result of his own actions). Both of them ceaselessly move towards all directions and attain various stages. Men fully perceive the one but fail to perceive the other. R. V. 1. 164. 38.

O individual soul ! in accordance with thine actions, thou assumest the form of a woman and that of a man, sometimes thou becomest a bachelor and sometimes thou becomest a virgin ; Thou walkest with the help of a staff when thy body becomes old and frail, thou takest birth again and again as thy face is turned towards all directions (in accordance with thy actions). ATH. X. 8 27.

O self-luminous soul ! thou becomest the offspring of the plants, thou becomest the offspring of the trees and thou becomest the offspring of all the living creatures and thou becomest the child of the waters.

YAJ. XII. 37.

ईश्वरीय ज्ञान-वेद

नित्य नियमों की पुस्तक

ओ३म्

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत
ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्
यजुस्तस्मादजायत॥ ऋ० १०-९०-९

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं
यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा
तदेषां निहितं गुहाविः॥ ऋ० १०-७१-१

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि
यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ यजु० ३४-५

Divine Revelation—the Vedas

The Books of Eternal Laws

OM

FROM that Most Adorable God for Whosc sake men perform all bounteous acts, the Rigveda and Samveda were produced: Therefrom the Atharva Veda derived its existence and Yajurveda had its origin from Him.

R. V. X. 90. 9.

O Brihaspati ! (Lord of Speech) the original source of the earliest speech which is the most excellent and spotless and which the learned men pronouce by giving name (to all existing objects) remains treasured within the cave-like heart (of sages), the very same becomes manifest by (their force) of love.

R. V. X. 7I. 1.

WHEREIN the Rig, the Sama, the Yaju and wherein (the Atharva) Vedas are placed together like spokes in the navel of the chariot-wheel and wherein the cognitive faculty of all the creatures is interwoven, may that mind of mine be possessed of auspicious ideas.

YAJ. XXXIV. 5.

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि
जनेभ्यः ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय
चार्य्याय च स्वाय चारणाय।
प्रियो देवानां दक्षिणायै
दातुरिह भूयासमयं मे कामः
समृध्यतामुप मादो नमतु॥

यजु० २६-२

पुनर्जन्म

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्
पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन्
पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रम्म आगन्।
वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपा
अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्॥

यजु० ४-१५

O mankind ! as I address this propitious speech of mine (i. e. the Vedas) to all the people i. e. to Brahmanas (men devoted to the propagation of Divine knowledge), to Kshatriyas (men engaged in military works), to Shudras (men engaged in manual works), to Vaishyas (men engaged in trade and commerce), to those who are my own devotees and to them who are men of low dignity : May I be beloved to the learned and beloved to those who are bounteous in this world,may this object of mine be fulfilled and may this aim of mine be realised. YAJ. XXXI. 2.

Transmigration

MAY I receive, through the grace God, my mind again in future life, may I have life again, may I get breath again,may my soul return again and may I be the possessor of eyes and ears again in future life ; May Agni, (self-refulgent God) the Leading Power of the entire universe, the Protector of my body Who is the Ever-living God keep us safe from misfortune and dishonour. YAJ. IV. 15.

सदाचारी जीवन

को अद्य युंक्ते धुरि गा ऋतस्य
शिमीवतो भामिनो दुर्हणायून् ।
आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून्य
एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥

ऋ० १-८४-१६

गुहा सतीरुप त्मना
प्र यच्छोचन्त धीतयः ।
कण्वा ऋतस्य धारया ॥

ऋ० ८-६-८

तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति
स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य
क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥

ऋ० १-१४५-२

MORAL LIFE

THE All-Blissful Lord unites today to the foremost part (our hearts) the rays (of knowledge) of the Eternal Truth which are impellers to activity, luminous, inviolable, fit for being uttered by the mouth, the enlighteners of the hearts and happiness-bestowing : The man who serves them whole-heartedly is really alive (whereas all others are like dead in this world). R. V. I. 84. 16.

THE intuitions which spontaneously rise in the cave (of the heart) glow profusely in the presence (of the self), men of wisdom (compare the same intuitions) with the stream of eternal law (in order to ascertain their validity). R. V. XXX. 6. 8,

WISE men seek by close persuit the solution of such problem cocerning which the common people never care to make any inquiry. The man who, becoming free from worldly attachment, accepts the fact which is revealed in his own conscience or becomes the partaker of the wisdom of the wise men does not remain in the state of mental suspense either in the beginning or at the end. R. V. I. 145. 2.

जिह्मश्ये[३]चरितवे मघोन्या
भोगय इष्टये राय उ त्वम्।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष
उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा॥

ऋ० १-११३-५

आयुषायुः कृतां जीवायु-
ष्मान् जीव मा मृथाः।
प्राणेनात्मन्वतां जीव
मा मृत्योरुदगा वशम्॥

अथर्व० १६-२७-८

उत्क्रामातः पुरुष माव पत्था
मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः॥
माच्छित्था अस्माल्लोका-
दग्नेः सूर्यस्य संदृशः॥

अथर्व० ८-१-४

THE bestower of the wealth (of vitality) i. e. the Dawn (of knowledge) has awakened the entire universe so that the coiled-up sleeper may get up and walk, that one of you may strive for attaining enjoyments, another for his cherished objects, and another still for wealth and that those who can see but little may acquire far-extended vision. R. V. 1. 113. 5.

O man ! Live following the foot-steps of the lives of those who have made their life (ideal). Live a long life having the life-force under they control and do not die. Live following the life of those who are master of the self. Never submit to the power of death.

ATH. XIX. 27. 8.

O ye mankind ! proceed onward from this (existing position of your life) and rise by breaking into pieces the net-work of death which bind you (from all sides) and never allow yourself to sink downward. Be not parted from this world (before proper time) where you aught to remain ever under the guidance of God the Self-refulgent and All-impelling Power. ATH. VIII. I. 4

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप-
प्रा गात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्याया-
गन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥ ऋ० १-११३-१६

सत्य

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो
ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्यु-
रुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥

अथर्व० १२-१-१

व्रतेन दीक्षामाप्नोति
दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति
श्रद्धया सत्यमाप्यते॥ यजु० १९-३०

O ye mankind wake up ! we have regained our fife, the vital force ; darkness hath passed away and illumination hath approached. The path manifested for the sun to travel we have reached the spot where life is prolonged.

R. V. 1. 113. 16.

TRUTH

TRUTH, mighty eternal law, heroism, fitness, activity, knowledge of revelation and self-sacrificing acts uphold the earth. May the earth which is the maintainer of our past and future provide us with ample space.

ATH. XII. 1. 1.

ONE attains consecration by observing the vow (of self-restraint), by consecration one attains fitness and by fitness one attains faith and by faith truth is attained. YAJ. 19. 30.

शुभ-संकल्प

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ यजु० ३४-१

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
यजु० ३४-२

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥
यजु० ३४-३

Noble Intention

THAT celestial entity which goeth far when man is working and wanders similarly while he is sleeping and that which travels far and wide is the only one light of all the lights : may that mind of mine be possessed of noble intentions. YAJ. XXXIV. 1.

THROUGH whose agency the patient wise men perfom their works or sacrifices and that which is mysterious seated in the inmost recess of all creatures : may that mind of mine be possessed of noble intentions.

YAJ. XXXIV. 2.

THAT which is endowed with the faculties of cognition,recollection and retention and that which is the immortal light placed within the self of all creatures and that without whose agency no work can be accomplished: may that mind of mine be possessed of noble intentions.

YAJ. XXXIV. 3.

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

यजु० ३४-४

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्ने-
नीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ यजु० ३४-६

निर्भयता

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं-
भयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादु-
त्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥

अथर्व० १९-१५-५

THAT immortal substance by which all this world that which was, is and will be,is fully comprehended and under whose authority the yajna presided by seven hotars is extended : may that mind of mine be possessed of noble intentions. YAJ. XXXIV. 4.

AS the skilful charioteer drives the horses with the reins the mind controls mankind (by ever keeping them under its sway) ; This mind remains within the heart, it is most swift (in movement) agile, may that mind of mine be possessed of noble intentions.

YAJ. XXXIV. 6.

—:)o(:—

FEARLESSNESS

MAY the atmosphere give us peace and safety and may both these heaven and the earth be secure for us. May we be free from danger from west and east and may there be no fear for us from north and south.

ATH. XIX. 15. 5.

अभयं मित्रादभयममित्राद-
भयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः
सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥

अथर्व० १६-१५-६

स्वावलम्बन

तेऽवर्द्धन्त स्वतवसो महित्वना
नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः।
विष्णुर्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं
वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥

ऋ० १-८५-७

स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व
स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥

यजु० २३-१५

MAY we be fearless of our friends and even of those who are unfriendly to us, may we never fall in dread of those whom we know and even of those whom we do not know : May we remain free from any apprehension by night and in the day-time, and may all the (beings residing in various) quarters be friendly to us. ATH. XIX. 15. 6.

SELF-RELIANCE

THEY who are self-relying persons attain greatness by virtue of their lofty enterprises, they ever dwell in a state of perfect happiness and make extensive habitation (for themselves and for others) for Vishnu (the All-pervading God) protects their virtuous undertakings which are happiness bestowing and felicity-showering and like the vital breath the Lord ever dwells in the lovely space of their heart. R. V. 1. 85. 7.

O man, the seeker of true knowledge ! make thy body fit by thine own exertion, perform the self-sacrificing act by thine own self and serve all the creatures relying on thyself alone so that the greatness of thyself may not be ruined by (depending on something other than thyself.) YAJ. XXIII. 15.

विश्वप्रेम

दृते दृँह मा मित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥

यजु० ३६-१८

प्रियं मा कृणु देवेषु
प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्य।

अथर्व० १६-६२-१

उदारता

त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं
वर्मेव स्यूतं परिपासि विश्वतः।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योन-
कृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः॥

ऋ० १-३१-१५

Universal Love

O Lord ! the Dispeller of the darkness of ignorance, please make me firm (in my conviction) so that all the living beings may look towards me with the eye of a friend. And may I also look towards all living beings with the eye of a friend. May we look towards one another (ever) with the eye of a friend.

YAJ. XXXVI. 18.

O Lord ! Make me an object of love among the enlightened persons, and make me beloved among the rulers of the world ; Make me dear to all who happen to see me whether they be ordinary labourers or noble persons.

ATH. XIX 62. 1.

—:)o(:—

LIBERALITY

O Agni (self-refulgent Lord !) like a well-sewn armour Thou dost protect the man from all sides who is liberal in benefactions to others: And the man possessed of tasteful means of subsistence who remains ever engaged in gratifying othrs and thus performs sacrifice for all the living beings is really the type of heaven (on earth).

R. V. I. 31. 15.

सामाजिक संगठन

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्
बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः
पद्भ्याँ शूद्रो अजायत॥ यजु० ३१-११

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं
मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं
तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं
पाप्मने क्लीबमाक्रयाया अयोगूं
कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम्॥
यजु० ३०-५

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु
रुचँ राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु
मयि धेहि रुचा रुचम्॥ यजु० १८-४८

Social Organisation

BRAHMAN (Man devoted to spiritual works) is (like) the mouth of this human society, Kshatriya (Man engaged in military works) has been made like its arms ; Vaishya (Man engaged in trade and commerce) is like its thighs and the Shudra (The labourer) has been created for the purpose of serving it like the feet. YAJ. XXXI. 11.

O ye organisers of human society ! let the Barhmana devote himself to tho propagation of divine knowledge, the government officials to the protection of people from distress, the traders to the preservation of cattle etc and the working class to industry and manual labour and keep away the thief engaged during dark hours, murderer of the hero engaged in sinful acts, the robber engaged in robbing others, the harlot engaged in whoredom and the flatterer engaged in the act of slander. YAJ. XXX. 5.

(O God ! please) set lustre to our Brahmnas– men devoted to spiritual achievements, give loveliness to our ruling chiefs and please impart beauty and splendour to the Vaishyas–men engaged in agriculture, trade and commerce and to the Shudras—men engaged in manual works and eastablish loveliness within me by virtue of (Thine universal) love.

YAJ. XVIII. 48.

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां
सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥

ऋ० ५-६०-५

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो
मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे
ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे॥

ऋ० १०-७१-७

—•—

सामाजिक संगठन

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं
सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे
सञ्जानाना उपासते॥ यजु० १०-१९१-२

LET all these (men) who are brothers (to one another) advance forward unitedly for the attainment of prosperity for the being none high and none low (amongest them). The Most Excellent Ordainer (of the universe). and Just Divinity is their Father. Let the earth pouring fourth abundant milk (etc.) bring auspicious days for the living creatures.

R. V. V. 60. 5.

MEN endowed with eyes and ears are alike but they are unequal so far their mental propensities are concerned ; some of them look like tanks the water of which reaches upto mouth, and some look like tanks the water of which reaches upto the waist whereas there are others who look like a pond which is abundantly filled with water and is fit to bathe in.

R. V. X. 71. 7.

SOCIAL HARMONY

O ye mankind ! let all your activities lead you to one common goal (for which) let there be a common language for all of you and let your mind be all of one accord to acquire the knowledge of various sciences fully and like enlightened seers who lived before you, you aught to worship me alone Who am the only real object of your devotion. R. V. X. 191. 2.

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥

ऋ० १०-१९१-३

समानी व आकूतिः
समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो
यथा वः सुसहासति ॥

ऋ० १०-१९१-४

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत
वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥

अथर्व० ३-३०-११
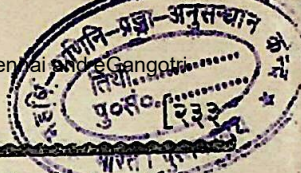
O ye mankind ! let the object of your thought be the same, the place of your assembly aught to be common, your mind should be of one accord and let your hearts be united together : I (God) initiate you in the common inspired hymn and provide all of you with common objects for accepting and offering.

R. V. X. 191. 3.

O ye mankind ! Let your object of life be one and the same, let your hearts be equal (in feeling) and let your minds be united together so that there may be an excellent common status of life for all. R. V. X.191. 4.

O ye mankind ! I ordain for you to have concordance in your heart, unanimity in your minds and freedom from hatred in your dealings. Everyone of you aught to love one another in every way just as the inviolable cow loveth the calf which she hath born.

Aih· III. 30. 11.

Swami Dayanand Saraswati

on Harmony between THE VEDAS AND SCIENCE

by Shri Ganga Prasad ji M. A , Tehri

SWAMI DAYANAND maintained that the Vedas contain the germs of all knowledge, and that their teachings are in perfect harmony with Science. It is hardly surprising that this has been looked upon as a very extravagant and unreasonable claim by Western people and many others who have received Western education. For a conflict between Science and Religion was a special feature of European History for several centuries.

In Western Europe, Science was first cultivated by the Arabs and Saracens who translated many Greek works, started colleges, developed arithmetic algebra, and trignometry, and laid the foundations of astronomy,chemistry, & physics. But scholars of science soon come into conflict with the Christian Church which smelt serious danger to its established dogmas from the researches of Science. The inquisition was regularly instituted in the 13th century by the Roman Church to try and punish heretics. It
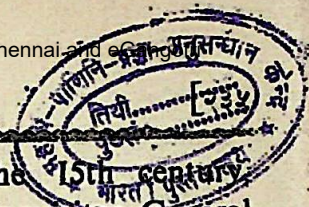
became more rigorous in the 15th century. Torquemada, who was Inquisitor-General for eighteen years, burnt 10,220 persons at stake, 6,860 in effigy, and otherwise punished 97,321 men. To name a few eminent scientists who were victims of the wrath of the Church, Galileo was prosecuted for believing in the Copernican theory that the earth moves round the Sun, and not the Sun round the earth Under the menace of torture he confessed, but recanted and was thrown in prison. Bruno was burnt for teaching the plurality of worlds It was after the Reformation that the persecution of science and scientists practically ceased.

Mohammadanism was also not very tolerant to the spread of knowledge and science. The dictum of Caliph Omar or his general Amru under which he ordered the destruction of the great Library of Alexandria in the 7th century is wellknown : " If a book teaches what is contained in the Quran, it is useless; if it teaches what is against Quran, it is heretic and should be destroyed."

Persecution of science or scientists is altogether unknown in the history of Vedic religion. The reason is not far to seek. The very word " Veda " means knowledge, being derived from

Vid, to know, and is cognate with the English word wit (wisdom). It has thus the same signification as the word " Science " derived from Letin scio, to know. In ancient India all sciences were believd to be derived from and based on the Vedas. The most important branches of the Vedic literature were :—

(i) The four Upavedas (literally "subordinate Vedas") viz.—(1) Ayurveda or the Science of life including the sciences of Medicine, Surgery. Hygiene, Chemistry, Physiology, Anatomy etc., (2) Arthaveda or the Science of Economics ; (3) Gandharvaveda or the Science of Music including also Drama, Dancing and other aesthetic arts ; and (4) Dhanurveda or the Science of War.

(ii) The six Vedangas (lit. "limbs of the Veda") viz —(1) Siksha or the science of phonetics and Orthoepy ; (2) Kalpa including (a) Dharma Sutras or the Principles of Law, (b) Shrauta Sutras or the rules of Vedic rituals, (c) Grihya Sutras or the rules of Domestic ceremonies, and Sulva Sutras or the principles of Geometry; (3) Vyakarana or Grammar; (4) Nighantu or Philology; (5) Chhandas or Prosody; and (6) Jyotisha or Astronomy.

(iii) The six Upangas (lit. "subordinate limbs of the Veda") viz.—the Darsanas or the

so called six schools of Philosophy including Logic, Metaphysics, Psychology, Ethics and also Physics.

The view that the Vedas contain the germs of all knowledge is found in the works of Sanskrit literature. Thus we read in Shatapatha Brahmana—

स ऐक्षत प्रजापतिः "त्रय्यां वाव विद्यायां सर्वाणि भूतानि। हन्त त्रयीमेव विद्यामात्मानमभि संस्करवै इति—

शत० १०।४।२।२१-२२

"The Lord of all creatures surveyed (the universe saying). "All beings are comprehended in the triple science (i. e. the Veda). Yes, this triple science alone, let me employ for the elevation of the soul."

Taittiriya Brahmana repeats the same thing :—

अथ सर्वाणि भूतानि पर्य्यैक्षत्। स त्रय्यामेव विद्यायां सर्वाणि भूतान्यपश्यत्। अत्र हि सर्वेषां छन्दसामात्मा सर्वेषां स्तोमानां सर्वेषां प्राणानां सर्वेषां देवानाम्। एतद्वै अस्ति। एतद्ध्यमृतम्। यद् ह्यमृतं तद् ह्यस्ति एतदु तद् यन्मर्त्यम्॥

"Then God surveyed all the created things. He saw all created things in triple science only. Here is the soul of all Chhandas or metres, all stomas or praises, all life and all knowledge. This alone is; this verily is immortality. What is immortality, that alone is. And this is what is for the mortals."

It may be explained that the Vedas are calle "triple science" trayividya because they deal with (1) Jnana, knowledge (2) Karma, works and (3) Bhakti or Upasana, worship or prayer, corresponding to the three functions of the human mind viz., knowing, willing, and feeling. This is not inconsistent with the fourfold division of the Veda into the four Samhitas, viz, Rigveda, Yajurveda, Samaveda and Atharvaveda, wherein knowledge is sub-divided into Jnana or general knowledge, and Vijnana or special knowledge The Rigveda (or the Veda of Richas) deals chiefly with general knowledge; the Yajurveda (or the Veda of yajna) deals chiefly with yajnas or works; the Samaveda or the Veda of Samans) deals chiefly with worship; and Atharvaveda (or the Veda of Atharvans) deals chiefly with special knowledge.

Swami Dayanand has not contented himself with merely asserting the old view. In his Introduction to the Commentary on the Vedas he has by way of illustration quoted profusely from the Vedas showing that their teachings are in complete accord with Science, and that many scientific truths which were not known in Europe before a century or too are clearly

mentioned or hinted at in the Vedas. Within the limits of this short essay, it would be impossible to adduce any detailed instance. The curious reader is referred to the English translation of the book by Pt. Ghasiram, M. A., LL.B.

Only one instance may be given. The Vedic doctrine of cosmogony is not based on the theory of creation ex nihilo (i. e. creation of the universe out of nothing), which is taught by the three great Semitic religions (viz. Judaism, Christianity and Mohammadanism), and is so repugnant to Science. The Vedas teach that the world is evolved from primordial or pre-existing matter, prakriti. In his Introduction to the Commentary on the Vedas, Swami Dayanand has quoted the well-known Nasadiya Sukta (Rigveda, VIII, 7, 17) and the Purusha Sukta Yajurveda XXXI) on this subject. The following verse of the Taittiriya Upanishad succinctly states the theory of biological evolution as well as the evolution of a planet from a nebulous or even a still more rarified state of matter viz. akasa or ether :—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधिभ्योऽन्नम्, अन्नाद्रेतः, रेतसः पुरुषः ॥

"By Him, the all-pervading Spirit, was produced ether; from the etherial state came out the gaseous state, from the gaseous state the igneous state, from the igneous state the molten state, from the molten stat the solid state; from the solid earth came out herbs; from herbs the food (or other vegetables); from food the seed of animal life; from the seed of animal life, man."

Let nobody suppose that Swami Dayanand Saraswati is alone in giving a rational or scientific interpretation of the Vedas. His interpretation is in consonance with the most ancient commentaries contained in the Brahmanas and in Yaska's Nirukta. The Sankhya Darsana lays down : बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे "The contents of the Veda are in conformity with Reason." It is the mediaeval commentators, Sayana, Mahidhara etc, who, following the degenerate theology of Pauranic times, have fastened on the Vedas the superstitious practices and unscientific beliefs of their own age. It was Swami Dayanand who by his correct interpretation restored the Vedic religion to its pristine purity, and showed that their teachings were in complete harmony with Science. And there is no reason why there should be any conflict between true Religion and true Science. For God is the source of both and both should be based on Reason, the divine faculty by which man is enabled to understand the word of God (i. e. the Vedas), as well as the work of God (i. e. nature).

आर्य समाज के नियम

१—सब सत्य विद्या: और जो पदार्थ विद्या से जाने उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वश[illegible] न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, [illegible] अनुपम, सर्वाधार सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश, और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

सार्वदेशिक प्रेस, दरियागंज दिल्ली में मुद्रित तथा रघुनाथ प्रसाद पाठक मुद्रक और प्रकाशक के लिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित